UNIVERSAL LIBRARY

OU_186382

UNIVERSAL LIBRARY

शृङ्गार-नायिका

मुद्रक :
वि. पु. भागवत
मौज प्रिंटिंग ब्यूरो,
खटावबाडी, गिरगांव,
बम्बई-४

प्रकाशक :
दीनानाथ दलाल
दलाल आर्ट स्टुडिओ,
४०-४२ केनेडी ब्रिज,
बम्बई-४

सर्वाधिकार स्वाधीन

हिन्दी प्रथमावृत्ति : अप्रैल १९५५

मूल्य साढ़े बारह रुपया

सर्वरूप जीवन का प्रतीक बनकर
कला
अनादि काल से
सांस्कृतिक जीवन की शाश्वत रेखा
की सर्जना करती आयी है: इस चिरन्तन साधना में
रत ज्ञात व अज्ञात कलाकारों
एवं
उनकी प्रेरणा का स्वीकार कर संस्कृति की परम्परा को
चिरञ्जीव करनेवाले रसिकों को

समर्पित

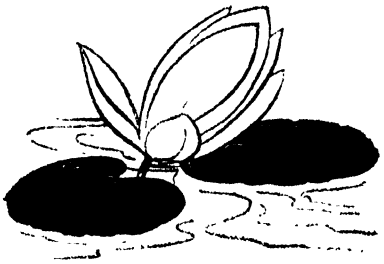

ऋ ण नि र्दे श

सहायक ग्रन्थ

कामसूत्रम : श्री वात्स्यायन : प्रकाशक : निर्णयसागर।
अनङ्गरङ्ग : श्री कल्याणमल्ल : प्रकाशक : श्री मुळे।
नागरसर्वस्व : श्री पद्म : मुद्रक : गुजराती मुद्रणयंत्रालय।
रतिरहस्य : श्री कोक्कोक : प्रकाशक : मुंबई संस्कृत मुद्रणयंत्रालय.
पञ्चसायक : श्री ज्योतीश्वराचार्य : प्रकाशक : पञ्जाब संस्कृत पुस्तकालय, लाहोर।
नाट्यशास्त्रम : श्री भरतमुनि : प्रकाशक : निर्णयसागर।
दशरूपक : श्री धनञ्जय : प्रकाशक . निर्णयसागर।
प्रतापरुद्रीय : श्री विद्यानाथ : प्रकाशक : निर्णयसागर।
रसमञ्जरी : श्री भानुभट्ट : प्रकाशक : निर्णयसागर।
शृङ्गारतिलक : श्री रुद्रभट्ट . प्रकाशक : निर्णयसागर।
शृङ्गार-प्रकाश : श्री भोज : संक्षिप्त सार : संपादक डा. व्ही. राघवन।
शृङ्गार-मञ्जरी : श्री हजरत सैय्यद अकबर शाह हुसैनी उर्फ बड़े साहिब : सं. डा. व्ही. राघवन : प्रकाशक : हैदराबाद आर्किओलॉजिकल डिपार्टमेंट।
साहित्यदर्पण : श्री विश्वनाथ : प्रकाशक : निर्णयसागर।
गाथासप्तसई : सं. हाल सातवाहन : मराठी आवृत्ति : सं. श्री स. आ. जोगळेकर।

अजंठा व अन्य प्राचीन भारतीय शिल्पों एवं अन्य कलाकृतियों से चित्रनिर्माण में आवश्यकतानुसार उचित लाभ उठाया गया है।

सहायक संस्थाएँ

मौज प्रिंटिंग ब्यूरो, बाम्बे फाइन आर्ट ऑफसेट अँड लिथो वर्क्स, सर्वोदय प्रिंटर्स, डी. डी. नेरोय और प्रभात प्रोसेस स्टूडिओ।

हमारी हर कार्य प्रवृत्ति को अपनी समझकर उसकी यशस्विता के लिए आत्मीयता से हाथ बँटानेवाले साथियों के हम कृतज्ञ हैं।

विषयानुक्रम

नमन : ९

प्रास्ताविक : १०

कामशास्त्रकारों की नायिकाएँ १२–१५ : कन्या, पुनर्भू व वेश्या : १२, शश, वृष व अश्व; मृगी, वडवा व हस्तिनी : १३, पद्मिनी, चित्रिणी, शंखिनी व हस्तिनी : १३, उनके लक्षणों का वर्गीकरण : १४–१५

नाट्यशास्त्र की नायिकाएँ १६–१८ : उत्तमा, मध्यमा व अधमा : १६, हास्य का विवरण : १७, शीलानुरोध से वर्गीकरण : १७, गंधर्वशीला, गंधर्वसत्त्वा : १८

साहित्यशास्त्रकारों की नायिकाएँ १९–३९ : नायिका : १९, उत्तमा, मध्यमा व अधमा : १९, उनके लक्षणों का वर्गीकरण : २१, स्वीया, अन्या व सामान्या : २१, पुनर्भू : २२, स्वीया : २४, ज्येष्ठा व कनिष्ठा : २५, मुग्धा, मध्या व प्रगल्भा : २७, यौवन व मन्मथ : २७, [illegible] व अभिसृता : २८, स्त्री जीवन की नैसर्गिक अवस्थाएँ : २९, मुग्धा : २९, मध्या : ३३, प्रगल्भा : ३४, धीरा, धीराधीरा व अधीरा : ३५, अन्या : ३६, अन्या वर्गीकरण : ३७, सामान्या : ३९, सामान्या वर्गीकरण : ३९

अष्टनायिकाएँ ४१–५८ : नाट्यशास्त्र का संकेत : ४१, स्वाधीनपतिका : ४२, वासकसज्जिका : ४३, प्रोषितभर्तृका : ४५, विरहोत्कण्ठिता : ४८, विप्रलब्धा : ४९, खण्डिता : ५०, खण्डिता नायिका वर्गीकरण : ५१, कलहान्तरिता : ५३, अभिसारिका : ५४, अभिसारिका नायिका वर्गीकरण : ५५, गर्वाभिसारिका : ५५, गणिकाभिसारिका : ५७

दूत व दूती ५९–६२ : मित्र : ५९, दूत वर्गीकरण : ५९, दूती वर्गीकरण : ५९, दूती के कार्य व आवश्यक गुण : ६०

उपसंहार : ६३–६४

चित्रानुक्रम

सप्तरंगी चित्र : *अष्टनायिका पृ. १ : अभिसारिका पृ. ८ : विरहोत्कण्ठिता पृ. १६ : प्रतीक्षमाणा पृ. २४ : कलहान्तरिता पृ. ३२ : स्वाधीनपतिका पृ. ४० : विप्रलब्धा पृ. ४९ : वासकसज्जिका पृ. ४७ : खण्डिता पृ. ५६ : प्रोषितपतिका पृ. ६४ :*

रेखा चित्र : विश्वनियामक त्रिमूर्ति : ९, नायक नायिका : १०, विश्रान्ता : ११, कन्या, पुनर्भू, वेश्या : १२, शश-मृगी, वृष-वडवा, अश्व-हस्तिनी : १३, भाव प्रतिमैत्री : १६, कुलीना : १६, वेश्या, वाह्याभ्यन्तरा : १७, [illegible] : १८, मोहनासक्त प्रेमिक : १९, उत्तमा, मध्यमा, अधमा : १९, प्रसाधनमग्न उत्तमा : २०, [illegible] गाथा : २१, गृहकृत्यपर स्वीया : २२, [illegible]शीला : २३, उत्सुक युग्म : २४, [illegible] : २४, ज्येष्ठा कनिष्ठा : २५, स्नेहमग्न ज्येष्ठा : २६, सहधर्मिणी : २६, कुलभूषणा : २७, मुग्धा, मध्या व प्रगल्भा : २८, कंदर्प : ३०, मुग्धा : ३१, विदग्धा मनोरमा : ३२, श्रान्तपति सेविका : ३३, चतुरिका मध्या : ३४, धीरा, धीराधीरा व अधीरा : ३५, वर्षोन्मुखा : ३६, क्रियाविदग्धा : ३६, शङ्कितसङ्केतागमना : ३७, अगम्या, सुखगम्या, कष्टगम्या : ३८, सामान्य वनिता : ३९, रूपजीवा : ४०, स्वयंप्रवर्तिका : ४१, स्वाधीनभर्तृका : ४१, आविशङ्किता : ४२, संकेतस्थल : ४३, वासकसज्जा गाथा : ४४, अनुनय : ४६, आगतपतिका : ४७, विरहदग्ध कोक : ४८, विरहिनी : ४९, सर्वाशङ्किता : ५२, पश्चात्तापवती : ५३, ज्योत्स्नाभिसारिका : ५४, नीहाराभिसारिका : ५५, कृष्णाभिसारिका : ५६, गणिका : ५७, साहसिका : ५८, सौवर्णिका : ५९, मीलन केलि : ५९, विदूषक : ६०, निसृष्टार्था : ६१, स्वयं दूती

शुद्धिपत्र :

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२०	२२	म्मिनब्यत्युननय	म्मिनब्यत्थनुनय
२१	३०	लम्मण	लम्मण
२५	२४	पआंग	पिआ ण
२८	३२	विश्वनाथ	[illegible]नाथ
४२	२५	पाश्व	पार्श्व
४३	२	एक्क	एक्क
४६	३२	नवहि	नवइ
५२	५	उपेक्खिओ	उवेक्खिओ
५७	१०	भागिए	भणिए
५६	२५	मेनस्स	मित्तस्स
५८	२७	णिस्सरिओ	णिस्सरइ
६०	१३	दंसिणोक्किगता	दंसिणक्किगाता
६१	३२	त्थाणस्सअतरं	त्थाणिस्सतरं
६१	२६	गोत्र	गोत्त
६१	३७	करा	कर

शृङ्गार-नायिका

लेखक

स. आ. जोगळेकर

चित्रकार

दीनानाथ दलाल

हिन्दी रूपान्तरकार

विजय पानमंद

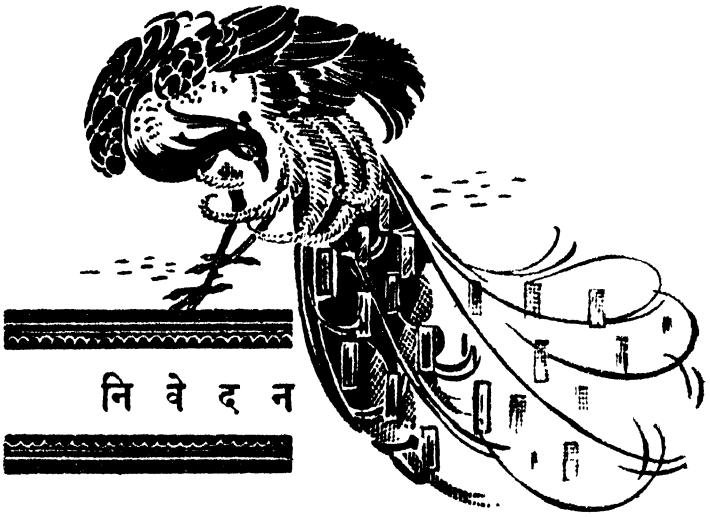

निवेदन

गीर्वाण वाणी संस्कृत से प्राकृत बोलियां उपजीं, और प्राकृत बोलियां से वर्तमान प्रादेशिक भाषाएँ विकसीं। संस्कृत व प्राकृत साहित्य एवं शिल्प कलाओं के माध्यम से भारतीय संस्कृति का स्वर अंकुरित हुआ और रेखा खिल पडी। जन साधारण मात्र को अतीत के उस कलापूर्ण जीवन का दर्शन दिलाना ग्रन्थका उद्देश्य है; रसिकों से अतः निवेदन है कि इस में यदि कुछ रुचिप्रद और सराहनीय जँचे तो उस का श्रेय इस विषय के प्रेरकों को दीजिए. और कुछ कमियाँ अथवा त्रुटियाँ खलीं तो हमारी अपरिमित अज्ञेयता पर क्षमा कीजिए। ऐसे कार्य व्यापारों के लिए आवश्यक प्रोत्साहन के अभाव को रसिक दूर करेंगे ऐसी कामना है।

अक्षय्य तृतीया
ता. २४ अप्रैल . . .
बम्बई

—प्रकाशक

उदाहरण के लिए, देखिए, भरत रसाध्याय (६.५४-६०) में प्रवृत्ति के अनुसार हास्य का विवरण देते हुए कहता है:

स्मितहसिते ज्येष्ठानां मध्यानां विहसितोपहसिते च।
अधमानामपहसितं ह्यतिहसितं चापि विज्ञेयम॥

हास्य के इस वर्गीकरण में निर्देशित भेद अत्यन्त सूक्ष्म हैं, जिनके लक्षण हैं:

स्मित व हसित उत्तम होते हैं: नयनों के कटाक्ष से, गाल के किञ्चित् विकास से तथा होठों के किंचित् स्फुरण से जो व्यक्त होता है, वह स्मित है। मुख तथा नेत्र उत्फुल्लित होकर कपोलों के विकास से तथा दन्तों के ईषत् दर्शन से जो व्यक्त होता है, वह हसित। विहसित तथा उपहसित मध्यम श्रेणी के हैं। नेत्र और कपोल इनके आकुञ्चन से तथा जो सस्वन प्रकट होता है, वह विहसित। उपहसित, नथुनों को फुलाकर, नयनों को घुमाकर तथा कन्धों को उठाकर, प्रकट होता है। अपहसित तथा अतिहसित अधम श्रेणी के हैं। आँखों में पानी एकत्र होकर और मस्तिष्क तथा कन्धे उछलाकर जो अभिव्यक्त होता है, वह अपहसित। क्षुब्ध आँखों से पानी बहाकर उद्धत तथा विकट स्वर मे जो ठहाका लगता है, वह अतिहसित। हास्य की ये स्थितियाँ जिन विनोदों के कारण होती हैं उनकी श्रेणियाँ भी इस वर्गीकरण के द्वारा नियत की जा सकती हैं।

भरत ने (२४.८४--८६) उत्तम, मध्यम एवं अधम चरित्र के नायकनायिकाओं का वर्णन किया है। उत्तम वह है, जो अहिंसा एवं सत्त्व इनसे सम्पूर्ण, धर्माधर्मविचक्षण एवं लोकक्रियाविशेषज्ञ, शास्त्रेतिहास कुशल एवं शिल्पादि कला सम्पन्न तथा जिसका वृत्त एवं शील संदेह से परे है। अधम वह है, जो निःसत्त्व एवं घातक, स्वल्पबुद्धि एवं दुराचारी, स्त्रीलम्पट एवं कलहप्रिय, कृतघ्न एवं छिद्रदर्शक, लोकक्रिया एवं लोकोपचार इनके प्रति अनभिज्ञ है। भरत ने सामान्याभिनय तथा वैशिक अध्यायों में उत्तमा, मध्यमा एवं अधमा नायिकाओं का वर्णन किया है। उत्तमा वह है, जो प्रियकर के अपराध पर भी उसे अप्रिय वचनों की ताड़ना नहीं देती, अपितु उसके दोषों का प्रच्छादन करती है तथा जिसका क्रोध क्षणिक होता है। मध्यमा वह है, जो विपक्षी के प्रति असूया रखती है, क्षणमात्र में अल्पकारण पर रुष्ट बनती है तथा क्षणमात्र के अनुनयपर प्रसन्नचित्ता बनती है। अधमा वह है, जो अकारण क्रोधाविष्ट होती है साथ ही जिसका क्रोध दीर्घकाल तक रहता है और प्रणयाभिसार में प्रतिकूल बर्ताव रखती है।

भरत ने सामान्याभिनय प्रकरण मे (२२.६४-८६) शील यानी प्रवृत्ति के अनुसार स्त्रियों का वर्गीकरण प्रस्तुत किया है, जो प्रतीकों के रूप मे यहाँ निवेदित किया जाता है। देखिए:

सुखस्य हि स्त्रियो मूलं नानाशीलधराश्च सा।
देवतासुरगन्धर्वरक्षोनागपतत्रिणाम॥
पिशाचयक्षव्यालानां नरवानरहस्तिनाम्।
मृगमीनोष्ट्रमकरखरसूकरवाजिनाम्॥
महिषाजगवादीनां तुल्यशीलाः स्त्रियः स्मृताः।

वात्स्यायन के द्वारा विवेचित लैङ्गिक विशेषताओं को शारीरिक एवं चारित्रिक वैशिष्ट्यों की परिपुष्टि देकर भरत ने इस वर्गीकरण की सर्जना की है। प्रत्येक वर्ग विशेष के लक्षणों का ब्यौरा उसने दिया है।

नाट्यशास्त्र मे के इस अनुच्छेद का भावार्थ, भरत द्वारा निवेदित उस सम्बन्धी वर्ग के प्रधान लक्षणों के साथ, आगे दिया जा रहा है: देवता (स्निग्धाङ्गी गन्धपुष्परत), असुर (अति निष्ठुर कलहप्रिया), गन्धर्व (तन्वङ्गी स्मितभाषिणी), नाग (तीक्ष्णनासा उग्रदर्शना), राक्षस (खररोमा रक्तविस्तीर्णलोचना), पिशाच सुरते कुत्सिताचारा), यक्ष (मद्यगन्धामिषप्रिया), व्याघ्र (पिङ्गदृक् उद्धत), नर (धर्मार्थकामनिरता), कपि (पिङ्गरोमाफलप्रिया), हस्ति (महाहनुललाटा), मृग (स्वल्पोदरी चलविस्तीर्णनयना), मत्स्य (दीर्घपीनोन्नतोक) उष्ट्र (लम्बोष्ठी अत्युन्नतकटिग्रीवा), मकर (महास्तना), खर (स्थूलजिह्वौष्ठवदना रतियुद्धप्रिया), सूकर (संक्षिप्त ललाटा दीर्घपृष्ठोदर), हय (चलचित्ता शीघ्रगमना), माहिष (कृहल्ललाटा उन्नतवक्त्रा), गाय (परिक्लेशसहा) अज (कृशतनुभुज शीघ्रगमना)।

रतिरहस्य (४·१४–१८), पञ्चसायक (१·२६–३२) व अनङ्गरङ्ग (४·७–१५) इन ग्रंथों में सत्त्वों के अनुसार स्त्रियों के वर्गीकरण प्रस्तुत किए हैं; परन्तु ध्यान में रहें कि इधर प्रस्तावित कुल वर्गों की संख्या नाट्यशास्त्र की तुलना में मर्यादित है। जैसे: रतिरहस्य में यक्ष, नाग, गन्धर्व, काक व खर; पञ्चसायक में देव, गन्धर्व, यक्ष, व प्रेत; और अनङ्गरङ्ग में देव, गन्धर्व, यक्ष, मनुष्य, पिशाच, नाग, काक, वानर व खर।

अब गंधर्वशीला सम्बन्धी ब्यौरा देखिए। जिसे प्रस्तुत करने का उद्देश्य है, नमूना दिखाना और जिसकी मध्ययुगीन कामशास्त्रकारों द्वारा निवेदित निरूपण के साथ तुलना करना।

क्षिप्रापरा चारुनेत्रा नखदन्तैः सुपुष्पितैः।
तन्वङ्गी स्मितभाषा च मन्दापत्या रतिप्रिया ॥ १०० ॥
नृत्ये गीते च नाट्ये च रता हृष्टा मृजावती।
गान्धर्वशीला विज्ञेया स्निग्धत्वक्केशलोचना ॥ १०१ ॥

उपरोक्त अभिव्यक्ति की तुलनात्मक परीक्षा के लिए अन्य ग्रन्थों में पाया जानेवाला गन्धर्वशीला सम्बन्धी विवरण यहाँ दिया जा रहा है:

रतिरहस्य :
अपेतरोमोज्ज्वलदीप्तवेषां
सुगंधधूपादिषु बद्धरागाम्।
सङ्गीतलीलाकुशलां कलाज्ञां
गन्धर्वसत्त्वां युवतीं वदन्ति ॥ ४·१६ ॥

पञ्चसायक :
चटुलचपलदृष्टिर्नृत्यगीतादिदक्षा
जनितविविधतुष्टिर्गन्धमाल्यानुरक्ता।
शिशिरसुरभिमासक्रीडनेप्रेमपात्री
भवति रुचिरमूर्तिः सैव गन्धर्वसत्त्वा ॥ १·३० ॥

अनङ्गरङ्ग :
संगीतलीलारसिकाति शांता
सुगंधमाल्यादि रुचिः शुभाङ्गी।
विलासिनी निर्मलचारुवेषा
गंधर्वसत्त्वा वनिता प्रदिष्टा ॥ ४·८ ॥

उपरोक्त सभी उदाहरणों का मतितार्थ साधारणतः अभिन्न है: गन्धर्वसत्त्वा की काया पतली और छरहरी होती है। उसका दृष्टिविक्षेप चंचल तथा वार्तालाप सस्मित होता है। वह गीत-नाट्य-नृत्य कुशल होती है और उसे विलास व सुगन्धि से स्वाभाविक अनुराग होता है।

इसके प्रथम दर्शन से ही यो आभास निर्माण होता है कि नाट्य एवं काम शास्त्रकारों द्वारा उस प्रत्येक वर्ग विशेष के शारीरिक, चारित्रिक एवं लैङ्गिक सूचित लक्षण वैज्ञानिक और तार्किक होंगे। तथापि अन्यान्य शास्त्रकारों द्वारा नियत किए हुए इन लक्षणों को कोष्टक के ढाँचे में रखनेपर उनका अवैज्ञानिकत्व एवं व्यर्थत्व दृग्गोचर होता है। उदाहरणार्थः भरत कहता है कि कपिसत्त्वा यह असह्य-रतिशीला; राक्षसत्त्वा नखदन्तक्षतकर्ती और खरसत्त्वा रतियुद्धप्रिया होती है; उसी भाँति जो वृक्षाराम-रतिप्रिया वह कपिसत्त्वा है, जलोद्यानवनप्रिया हस्तिसत्त्वा तथा जलक्रीडावनप्रिया महिषसत्त्वा। सामान्यतः ये उप-भेद अनाकलनीय हैं। कल्याणमल्ल ने अनङ्गरङ् में (३·२६) स्पष्टतः सूचित किया है, कि संकर के कारण प्रवृत्तियों एवं सत्त्वों का सम्मिश्रण होता है अतः उपरोक्त लक्षणों की वास्तविक प्रतीति होना असम्भव है। प्रतीक चिह्नों के रूप से निवेदित किए हुए ये वर्गीकरण यद्यपि मनोहारी कल्पना की सर्जना आच्छन्न करते हों तथापि उनकी रचना उत्क्रान्ति सिद्धान्त के साथ मेल खाते है ऐसा भासमान हुआ तो भी तर्क के कठोर निकषपर वे सच्चे साबित नहीं होते है। बावजूद इसके कि यह वर्गीकरण मूलतः लैङ्गिक रहे है। सम्भवतः यही कारण होगा कि जिससे साहित्यकारों ने उसका अस्वीकार किया हो।

४: साहित्यशास्त्रकारों की नायिकाएँ

काम तथा नाट्य शास्त्रकारों का नाटकों में नायिकाओं का अभिनय करनेवाली अभिनेत्रियों के साथ प्रत्यक्ष अथवा व्यावहारिक सम्बन्ध तथा सम्पर्क होने से, उन्होंने नायिकाओं के वैशिष्ट्यों की ओर अधिक ध्यान दिया। साहित्यशास्त्रकारों का नायिकाओं के साथ सम्पन्न सम्पर्क केवल शास्त्रसम्बन्धी होने से परिभाषाएँ व विवरण और सलक्षण एवं सोदाहरण वर्गीकरण का व्यवधान तथा आवश्यक समन्वय वे उचित मात्रा में रख सके। यह वर्गीकरण तथा विश्लेषण उनके द्वारा शृङ्गार-विकास के प्रधान उद्देश्यानुसार किया गया है। संस्कृत साहित्यिकों के द्वारा इसी प्रेरणा से नायिकाओं का निर्माण अथवा निर्वाचन किया है। सच है कि ये साहित्यकार विचक्षण तथापि नायिकाओं के व्यक्तित्व का अविष्कार तथा निर्माण परिस्थिति के अनुसार होनेके नाते उनके ये चरित्र मूलतः यद्यपि सचेतन संश्लिष्ट तथा स्वतंत्र होने के कारण भले ही कितनी भी नापतौल के रूप में उन्होंने वर्गीकरण क्यों न प्रस्तुत किये हों तब भी उनमें अपेक्षित चैतन्यका अभाव है और अन्ततः कहीं न कहीं कुछ न्यून पाया ही जाता है। इसके बावजूद भी इनमें से कुछ एक वर्गों का पारस्परिक विलीनीकरण होने के कारण उनकी भिन्नता वास्तविक रूप में तय करना असम्भाव्यता है; अतः उनका अध्ययन केवल सर्वसामान्य धारणा तथा स्थूलमान के अनुसार करना होगा यह निश्चित।

नायिका :

शृङ्गारमंजरी में (१ : १७) नायिका की निम्नानुसार परिभाषा की है :

शृङ्गाररसालम्बनं स्त्री नायिका।

रसमंजरी की टीका करती हुई व्यङ्ग्यार्थ कौमुदी निम्नानुसार परिभाषा को प्रस्तुत करती है :

नयति वशीकरोति सा नायिका।

वस्तुतः इन दोनों परिभाषाओं का आशय एकही है। नायिका वह है जो नायक की प्रेयसी है, जो नायक को वशीभूत करती है, उसे शृंगार का मार्ग दिखाती है।

कामशास्त्रकारों के निरूपण का अंतर्यामी लक्ष्य भी यही रहा है। केवल उनका विवेचन तथा आँकन अधिक व्यावहारिक है।

इस से यह ज्ञात होगा कि संस्कृत साहित्य की 'नायिका' संज्ञा की व्यापकता अंग्रेजी भाषा की हीरॉइन इस संज्ञा के समान नहीं है। ऑफिलिया नायिका इस संज्ञा का अंग अवश्य बनेगी, तथापि उच्चाशी लेडी मॅकबेथ कभी न मानी जायेगी; वैसे ही शकुंतला उसकी समीपता धारण करेगी परन्तु महाभारत की आदिशक्ति द्रौपदी को दूर ही रहना होगा।

उत्तमा, मध्यमा व अधमा :

नायिकाओं के प्रत्येक वर्ग में उत्तमा, मध्यमा तथा अधमा इन उपभेदों की संभाव्यता है, अतः उन्हें विवेचन मे आद्यस्थान दिया जाता है।

रसमंजरी मे भानुभट्ट के द्वारा इन संज्ञाओं की निम्नानुसार परिभाषाएँ प्रस्तुत की गयी है :

अहितकारिण्यपि प्रियतमे हितकारिण्युत्तमा। हिताऽहितकारिणि प्रियतमे हिताऽहितचेष्टावती मध्यमा। हितकारिण्यपि प्रियतमेऽहितकारिण्यधमा।

उत्तमा वह है जो प्रियकर के द्वारा अपराध होनेपर भी उसपर अनुराग रखती है; मध्यमा वह है जिसका बर्ताव प्रियकर के अनुकूल अथवा प्रतिकूल भावनाओं के अनुसार होता है; अधमा वह है जो प्रियकर के अनुरागित होने पर भी उससे प्रतिकूल रोष रखती है।

आमोद नामक रसमंजरी की टीका के समीक्षाकर्ता पंडित रङ्गशायिन का कहना है कि अव्याप्ति के कारण ये परिभाषाएँ सदोष है। उसकी आलोचना के प्रमुख आक्षेप का आधार है कि ये वर्गीकरण मूलगामी होने के कारण, चाहिए कि वह नायिकाओं के सभी वर्गों को लागू हों, लेकिन वैसा होता नहीं है। अपने आक्षेप के पक्ष में वह उदाहरण के प्रमाण रूप मे कहता है कि स्वाधीनपतिका नायिका के पति का न कोई अपराध होता है और वैसे ही खण्डिता नायिका अपराधी नायकपर क्षुब्ध ही होती है; उन्हें इस वर्गीकरण के लक्षण किस आधारपर लगाएँ ? अतः उत्तमा, मध्यमा तथा अधमा का यह वर्गीकरण नायिका की सांस्कृतिकता के मूल्यांकन के आधारपर होना चाहिए। परन्तु इन आक्षेपों का खण्डन असम्भव नहीं है।

इन संज्ञाओं का परिभाषा समान वर्णन रुद्रभट्ट ने शृङ्गारतिलक (१ : ८९-९१) में प्रस्तुत किया है। देखिये :

दोषानुरूपकोपा यानुनीता च प्रसीदति।
रज्यते च भृशं नाथे गुणहार्योत्तमेति सा॥
दोषे स्वल्पेऽपि या कोपं धत्ते कष्टेन मुञ्चति।
प्रयाति कारणाद्रागं मध्यमा सा मता यथा॥
या कुप्यति विनादोषं स्निह्यत्युननयं विना।
निर्हेतुकप्रवृत्तिश्च चलचित्तापि साधमा॥

जिसका रोष अपने प्रिय के दोष के अनुरूप होता है और जो अनुनय करने पर प्रसन्न होती है, वह उत्तमा; अपराध अल्प होते हुए भी जिसका क्रोध बेप्रमाण होता है तथा जिसकी सान्त्वना के लिए काफ़ी कष्ट उठाने पड़ते हैं, वह मध्यमा; जो अकारण क्रुद्ध होती है और किञ्चित अनुनय से प्रसन्न होती है, जिसकी प्रवृत्तियाँ निर्हेतुक, मन चञ्चल होता है, वह अधमा है।

नायक के अपराध के कारण रोषित नायिका, अनंतर नायक का अनुनय, उपरान्त दोनो को प्राप्त होनेवाला संतोष, इन भावस्थितियों के आधारपर यह वर्गीकरण अधिष्ठित है।

इन परिभाषाओं तथा आक्षेपों का विचार करते हुए शृंगारमंजरीकार ने उक्त संज्ञाओं की निम्नानुसार परिभाषाएं की है :

प्रियहितादधिकहितकारिणी उत्तमा। प्रियहितेन समं हितकारिणी मध्यमा। प्रियहितान्न्यूनहितकारिणी अधमा।

उत्तमा वह है जिसके प्रणय की उत्कटता प्रिय की प्रीति की अपेक्षा अधिक होती है; मध्यमा उसे कहे जिसका प्रणयानुराग प्रिय की प्रीति की प्रतिक्रिया के प्रमाण में प्रकट होता है; अधमा उसे कहे जिसके मन में प्रिय के स्नेह के प्रति न्यून भाव होता है।

यह सत्य है कि रसमंजरी की परिभाषाओं के विरोध मे उपस्थित किये हुए आमोदकर्ता के आक्षेप

शृङ्गारमञ्जरी की परिभाषाओं पर भी प्रकट किए जा सकते हैं। उदाहरणार्थ: खंडिता के बारे में प्रियकर की प्रेयसी की प्रीति अथवा तज्जन्य प्रतिक्रिया का प्रश्न निर्माण ही नहीं होता!

आलंकारिकों ने इस वर्गीकरण को नायिकाओं के सभी भेदों को लागू किया है। विस्तार से मुक्ति पाने के लिए विवेचन एवं उदाहरणों को निकाल कर संक्षिप्त आवश्यक सार कोष्टक के रूप में यहां प्रस्तुत किया है। चूंकि कोष्टक के पहले खाने में सूचित नायिकाओं के लक्षणविशेष, आगे आनेवाले हैं अतः इस अड़चन को दूर करने के लिए सुझाव है कि लक्षणों का परिचय होने के बाद पुनरपि इस कोष्टक को देखें।

नायिका :	उत्तमा	मध्यमा	अधमा
यौवनावस्था :	प्रगल्भा	मध्या	मुग्धा
स्वीया :	पति में अपरिमित प्रीति	आज्ञाधारक; प्रतियोगी प्रीति	चंचलमति
अन्या :	एक ही प्रियकर में यावज्जीव गुप्त अनुराग	उपपति के बारे में प्रकट अनुराग	चंचलहृदया
सामान्या :	एकाचारिणी	कल्पितानुरागा, स्वतंत्रा.	जनन्यधीना.
स्वाधीनपतिका :	प्रणयकलह स्वयंस्फूर्ति से मिटाती है	प्रणयकलह निर्माण करती व मिटाती है	प्रणयकलह निर्माण करती है व पति की ओरसे उसके शमन की अपेक्षा करती है
वासकसज्जिका :	प्रियकर की रुचि का शृङ्गार धारण करती है, अत्यंत औत्सुक्य से उसकी मार्गप्रतीक्षा करती है	पति ने प्रेषित अलंकार निर्बंधपन से धारण करते हुए उसकी मार्गप्रतीक्षा करती है	प्रतिदिन का वेष धारण करते हुए औपचारिकता से पति की मार्गप्रतीक्षा करती है
प्रोषितभर्तृका :	वियोग की केवल कल्पना या श्रुति से व्यथित	प्रत्यक्ष, वर्तमान वियोग के कारण व्यथित	वियोग के अनंतर कालावधि से व्यथित
विरहोत्कण्ठिता :	अल्पविरह से भी उत्कंठित	प्रियकर के अदृश्य होते ही मूर्च्छित	विरहप्रभाव कालावधि के बाद अनुभूत होता है
विप्रलब्धा :	वञ्चना की कल्पना से व्याकुल	वञ्चना के कारण दुःखित	वञ्चना के कारण संतप्त
खंडिता :	अन्यासक्ति(कल्पना)दुःखिता; लघुमानवती	अन्यसंभोग(श्रुति)दुःखिता; मध्यमानवती	अन्यसंभोगप्रत्यक्षदुःखिता; गुरु मानवती
कलहान्तरिता :	अनुनय से पहले ही कलह के लिए पश्चात्तापित	क्रोध व अनुराग, ताप व पश्चात्ताप समान.	पश्चात्ताप की अपेक्षा क्रोध की अधिकता
अभिसारिका :	कामाभिसारिका; अपने शरीर के बारे में लापरवाह	अभिसारको जाते समय साथ में सखी की आवश्यकता	अपनी सुविधानुसार अभिसार को जाती है

उत्तमा नायिका का उदाहरण देते हुए निम्न प्रस्तुत गाथा को उल्लेख गाथासप्तशती की एक अप्रकाशित टीका का कर्ता श्री भुवनपाल (भाण्डारकर ओरिएण्टल रिसर्च इन्स्टिट्यूट २२४ : १८८० : ८१) कहता है :

जाणइ जाणावेउं अणुणअविद्दविअमाणपरिसेसं
अद्दरिक्कम्मि वि विणआवलम्बण सच्चिअ कुणन्ती ॥ ८८ ॥

सचमुच, जो पति के प्रणय अनुनय को सुनकर मन में द्रवित होती है फिर भी शेष मान को अकांत में भी सविनय दिखाना केवल वही जानती है।

उपरोक्त निर्देशित लक्षणों के अनुसार अधम नायिका का उदाहरण देखिए :

चित्ताणिअदइअसमागमम्मि कअमण्णुआइं भरिऊण
सुण्णं कलहाअन्ती सहीहिं रुण्णा ण ओहसिआ ॥ ६० ॥

अभी अभी पति मिले, त्यों ही क्षोभ की स्मृतियाँ स्मृत कर कलह को आवाहित करनेवाली स्त्री की मनःस्थिति के बारे में उस की सखियों को खेद होता है। सहानुभूति के कारण वे उपहास नहीं करती।

गीत गोविन्द के द्वितीय सर्ग में जयदेव कहता है :

गणयति गुणग्रामं भ्रामं भ्रमादपि नेहते
वहति च परीतोषं दोषं विमुञ्चति दूरतः।
युवतिषु चलन तृष्णे कृष्णे विहारिणि मां विना
पुनरपि मनो वामं कामं करोति करोमि किं ॥

सखी राधा से पूछ बैठी : अन्य युवतियों के साथ प्रणय अभिसार में रममाण होनेवाले कृष्ण का स्मरण तुम कैसे कर सकती हो? इसपर राधा ने कहा : सखी क्या करूँ? भले उसने अनगिनत अपराध किए हों परन्तु मैं उसके दोष देख भी नहीं सकती हूँ। मेरा मन केवल उसके गुणों के गुँजन में गूँथा रहता है। जाने क्यों अन्य अनङ्गनाओं की अभिलाषा के कारण मुझ से विन्मुख हुए कृष्ण की ओर ही वह खींचा हुआ रहता है। मै जानती हूँ कि यह विपरीत है; किन्तु मन की उस दौड़ के सम्मुख मैं कहीं की नहीं रहती। मै करूँ भी क्या?

इधर गीत गोविन्द की नायिका उत्तमा है; तथापि अग्रम सर्ग में राधा कृष्ण की जो निर्भत्सना करती है वह अवलोकित कर उसे कम से कम मध्यमा कहने को मन होता है। वह कहती है, शृङ्गार के कारण हुई अनिद्रा से तुम्हारे नयन उनिन्दे निःस्तेज बने है, तुम्हारे ओठोंपर दन्तव्रण दिखते है। जाओ, तुम उसी के पास जाओ। तिसपर कृष्ण ने हँस कर कहा : नहीं कतई नहीं; सो नहीं है-मै तो तुम्हारे लिए कमल नोंचता था, तब भ्रमर ने यह दंश किया है। खण्डिता इस अपनहुति से फँसी नहीं। उपरान्त, कृष्ण ने जिस ढँग से राधा का अनुनय किया उसका विवरण देने के लिए कविवर जयदेव को नवम् तथा दशम् सर्गों की सर्जना करनी पड़ी। क्या इसे हम कवि का कौशल कहे, या राधा के मान की गुरुता माने इस के प्रति रसिक पाठक को अवश्य सम्भ्रम होता है!

स्वीया, अन्या, सामान्या :

रसमञ्जरी मे प्रारम्भ मे ही लिखा है :

नायिका त्रिविधा-स्वीया, परकीया सामान्यवनिता चेति।

इनके स्थानो पर कइयों ने स्वकीया, अन्या तथा साधारणा इन संज्ञाओं की संयोजना की है; सभी अलंकारिकों की इस वर्गीकरण को मान्यता है।

उत्तरकालीन अलंकारिको के द्वारा निवेदित इस वर्गीकरण का आधार वात्स्यायन तथा भरत है। वात्स्यायन की पुनर्भू तथा भरत की बाह्यान्तरा के स्थानपर अन्या नायिका अवतरित होती है।

स्वीया का तात्पर्य अपनी विवाहिता पत्नी। स्वीया विनयशील, गृहकृत्य तत्पर तथा पतिव्रता होती है। यह तो सर्वमान्य सिद्धान्त है कि यदि पत्नी के चरित्र मे पति तथा कुल की प्रतिष्ठा और सुख एवं सुविधा की दृष्टि से यह गुण होंगे तब ही कौटुम्बिक जीवन सुखपूर्ण होगा। जो अन्य की पत्नी है अथवा जो अन्य के स्वाधीन है वह परकीया अथवा अन्या है। उसके पति की भी यह इच्छा स्वाभाविक है कि वह विनयशीला, गृहकृत्यतत्परता तथा पतिव्रता हो। अगर उस में पातिव्रत्य गृहित मान लेते है तो कवि के जीवन का तथा साहित्य का रस सूख जायगा। जाने क्यों इसीलिए, साहित्यशास्त्रकारों ने इन गुणो की अभिव्यञ्जना अन्या में नहीं की है। इतना भी पर्याप्त नहीं दिखता इसलिए वैदग्ध्य एवं सौंदर्य का भी आरोपन उसपर किया है, जिन के होने की मूलगामी आवश्यकता अपेक्षित नहीं है। मानिए मानवी प्रवृत्ति ही ऐसी है। राधाकृष्ण के गीत सुनते समय हम तो अपने को कृष्ण मानकर ही बैठते है; न उस बेचारी के यजमान की किसी को स्मृति होती है! जहाँ तक साहित्य की बात है, स्त्री में जितने अधिक गुणो की अधिष्ठापना हैं मानिए, उसकी उतनी ही अधिक खींचातानी है।

विख्यात साहित्यिक राजा भोज ने शृङ्गार प्रकाश में वात्स्यायन की अनेक शतियोंतक लुप्तप्राय बनी पुनर्भू नायिका का पुनरुज्जीवन किया है। राजा भोज का ग्रन्थ अबतक अप्रकाशित है; अतः उसके वर्गीकरण के बारे में विवेचन करना असम्भव है। तथापि नायिकाओं के वर्गीकरण में पुनर्भू के स्वीकार के उचित कारण की खोज करने के लिए वात्स्यायन द्वारा विवेचित तर्क का ही आधार लेना होगा।

वात्स्यायन कहता है : इन्द्रियोंपर मन का काबू न होने से कामातुर बनी सौख्यार्थिनी विधवा यदि गुणवान्, समर्थ और सम्पन्न नायका का स्वीकार करेगी तो उसे पुनर्भू कहा जाए। गुण हीन पति के होते हुए जो गुणवान साजन का स्वीकार करती है उसे भी पुनर्भू माना जाए। लेकिन पति के किसी प्रत्यक्ष अपराध के अभाव में उसको त्यागने के पहले, उसने जो कुछ वस्त्रालङ्कारादि दिए हों उसे लौटाना चाहिए। पति का त्याग करनेपर अगर वह अनेक नायकों का स्वीकार करेगी तो उसे पुनर्भू के बजाय वेश्या कहना अधिक समुचित होगा। कुलवधु नायक की धर्मपत्नी होने के नाते उसको चाहिए कि वह अपना आचरण शालीन रखे और घरबार को अपव्यय से बचाए। पुनर्भू को चाहिए कि वह नायक का स्वीकार करने से पहले उसकी सम्पन्नता ध्यान में ले। सिर्फ खानपान देनेवाले पर लट्टू न बने। नायक के स्वीकार के बाद विपुल द्रव्य के व्यय से पुष्प फलों की वाटिकाएँ तथा उद्यान, मनोविनोद एवं क्रीड़ा के लिए तैयार कर मित्रसंघ एकत्र करते हुए वनविहार, भोजन तथा मेघोत्सव सम्पन्न करे नायकों के मित्रों के साथ मौज मजाक की बातें करें, उनके साथ अदब का रिश्ता रखे और उनके सामने अपने कलाकौशल को प्रदर्शित करें। एकान्त में चौंसष्ट कलाओं के उपयोग से नायक का रंजन करें। स्वजनों को वस्त्रादि का दान दें और कुलीन सौतों को उपकृत करें।

इस से मालूम होता है कि वात्स्यायन की पुनर्भू नायिका पुनर्विवाहिता गृहिणी न हो कर अवरुद्धा विलासिनी है। नीरस स्त्री जीवन, ढाँचे का सा कौटुम्बिक जीवन और सुरक्षित स्थैर्य के काल में ही इस प्रकार की नायिकाएँ पाई जाती हैं। वात्स्यायन एवं भोज के काल में ऐसी परिस्थिति होगी ऐसा अनुमान किया जा सकता है और इसीलिए पुरातन पुनर्भू का पुनरुज्जीवन हो सका।

राजा भोज ने पुनर्भू में चार उपभेदों की कल्पना की है :

पुनर्भू

अक्षता	क्षता	यातायाता	यायावरा

अक्षता तथा क्षता संज्ञाएँ सर्वश्रुत तथा सर्वज्ञात हैं। यातायाता परगृहपर किसी अन्यके द्वारा पुत्रोत्पादन करने के बाद लौटी हुई स्त्री। जैसे कि बृहस्पति की भार्या तारा सोममें बुध नामक पुत्रोत्पादन के बाद लौट आती है। कहा जाता है कि यायावरा का तात्पर्य है घुमक्कड़ी। जैसे कि माधवी है जो हर्यश्व, दिवोदास, उर्शानर तथा विश्वामित्र इनके पास एक एक साल निवास कर के तथा प्रत्येक से पाये हुए पुत्र को प्रत्येक को देकर पिता के घर लौटी। ऐसा वरदान उसके लिए था कि भले ही वह कितनी भी बार प्रसूत क्यों न हो; अन्ततः वह कुमारिका ही रहेगी। वात्स्यायन के द्वारा सर्जित तथा राजा भोज के द्वारा पुरस्कृत पुनर्भू नायिका भेद अन्य साहित्यशिल्पियों ने अस्वीकृत किया है। सम्भवतः ऐसा अनुमान किया जा सकता है कि, चूँकि पुनर्भू अनुपभुक्ता की समानता मुग्धा से उपभुक्ता की समानता मध्या से है और कामशास्त्र को मान्य पुत्रोत्पादन की अभिप्रेत आवश्यकता की अपेक्षा साहित्यशास्त्र को रसनिष्पत्ति की अधिक आवश्यकता होने के कारण, आलंकारिकों ने पुनर्भू की विपदा से मुक्त होना अधिक उपादेय माना होगा।

शृङ्गारतिलक (१.४६) में रुद्रभट्ट ने उचित ही कहा :

एकावरा मता मुग्धा पुनर्भूश्च यतोऽनयोः।
अतिसूक्ष्मतया भेदः कविभिर्न प्रदर्शितः॥

स्वीया :

साहित्यशास्त्रकारों ने स्वीया के निम्मानुसार लक्षण बतलाए है :

स्वीया शीलार्जवादियुक् ॥ —दशरूपक
स्वामिन्येवाऽनुरक्ता स्वीया ॥ —रसमञ्जरी
स्वकीया उत्तमाचारा पतिमात्रानुचारिणी ॥ —रसरत्नहार
पौराचाररता साध्वी क्षमार्जवविभूषिता ॥ —शृङ्गारतिलक
विनयार्जवादियुक्ता गृहकर्मपरा पतिव्रता स्वीया ॥ —साहित्यदर्पण

अपनी पत्नी गृहकर्मपरा हो, यह प्रत्येक गृहस्थ की कामना होती है; क्योंकि इसी गुणपर कौटुम्बिक स्वास्थ्य आधारित होता है। अपनी पत्नी पतिव्रता हो यह प्रत्येक पति की सुप्त अभिलाषा होती है। धार्मिकों की तो कम से कम यह अपेक्षा होती ही है, क्योंकि वे स्वयं सद्धर्म पालक होते है अतः चाहते है, अपने कुटुम्बियों का आचरण भी शुद्ध रहे। परस्त्रीगमन करनेवाले पति महाशयों की भी प्रामाणिक इच्छा होती है कि अपनी पत्नी पतिव्रता हो, वस्तुतः उसीपर तो उनकी प्रतिष्ठा तथा सम्मान अवलम्बित होता है। इस प्रकार केवल लौकिक व्यवहार को दृष्टिसम्मुख रख ये परिभाषाएँ निर्मिति होने के कारण, एकांगी जँचती है। इस प्रकार की वदन्ति सुनी जाती है कि जो केवल पतिमात्रानुसरण करनेवाली साध्वी होती है, वह भी पति को पर्याप्त संतोष नहीं दे सकती। ऐसी परिस्थिति में पति महाशय जरा छुल छुलैय्ये और आटे दाल का भाव जाननेवाले होगे तो मत पूछिये ! अस्तु।

रसमञ्जरी में की परिभाषा के कई श्लेषार्थ निकाले गए है। कई आक्षेप उठाए गए है। स्वामी पर अनुराग रखनेवाली स्वीया; केवल स्वामीपर अनुराग रखनेवाली स्वीया; केवल अपने विवाहित स्वामी पर अनुराग रखनेवाली स्वीया; अपने स्वामी पर जो अनुराग रखती है तथा उसके साथ यावज्जीव एकनिष्ठा होती है वह पतिव्रता; आदि। रसमञ्जरी द्वारा प्रस्तुत परिभाषा के 'एव' इस शब्द के प्रति शृङ्गारमञ्जरी आक्षेप उठाती है। इसके विपक्ष में 'एव' यह शब्द समीचीन होकर उसके कारण परिभाषा की व्याप्ति की सीमाएँ मर्यादित की जा सकती है इस प्रकार की सम्मति रसमञ्जरी का टीकाकर्ता प्रकट करता है। यदि स्वीया परगामिनी बनती है अथवा ज्यों ही परपुरुष पर अनुराग रखना शुरू करती है त्यों ही वह स्वीया के स्थान से च्युत हो जाती है। स्वीया की भाँति अन्या अथवा परकीया ये दोनों भी किसी न किसी की विवाहित पत्नियाँ होती है। वस्तुतः वे अपने पति की स्वीया ही होती है, अतः पति महाशय अवश्य अपेक्षा करेंगे कि पातिव्रत की समृद्धि उसके पास हो। किन्तु आलंकारिकों ने पातिव्रत के बन्धन से अन्या को मुक्त रखा है। उनका कहना है कि अन्या अपने पति से प्रेम का केवल बहाना करती है। उसका यह आविर्भाव औपचारिक और व्यावहारिक होता है। लोकोपचार तथा लोकमर्यादा का पालन करने के लिए; व्यावहारिक,

कौटुंबिक जीवन में के अपने स्थान को सुरक्षित रखने के लिए वह सब कुछ करती है। मानो उसके अनुराग का पात्र पति न होकर और कोई अन्य होता है। इसीलिए तो आलंकारिकों ने इस वर्ग के लिए 'अन्या' संज्ञा की संयोजना की है।

ऊपरनिर्दिष्ट लक्षणों के अनुसार गाथासप्तशती में पाए जाने वाले स्वीया सम्बन्धी उदाहरण देखिए :

१ : विनय

लज्जापज्जत्तपसाहणाइ परतत्तिणिप्पिवासाइं
अविणअदिम्मोहाइं धण्णाण घरे कलत्ताइं ॥ ८६० ॥

लज्जा ही कुलस्त्रियों का प्रसाधन है। पति के अतिरिक्त अन्य पुरुषों के प्रति वे निरभिलाष रहें। अविनय की मूढ़ता से वे सदा अलिप्त रहें। ऐसी स्त्रियों की बलिहारी हैं, वैसे उनके घरों की भी!

२ : आर्जव (अकौटिल्य)

हसिअमविआरमुद्धं भमिअं विरहिअविलासमसच्छाअं
भणिअं सहावसरलं धण्णाण घरे कलत्ताणं ॥ ८६१ ॥

जिस घर की नारियाँ निर्विकार पन से टहल सकती हैं, खुले मन से बोलती हैं तथा अकृत्रिमता से वर्ताव रखती हैं, वह कुटुम्ब सचमुच बड़ी प्रशंसा का पात्र है।

३ : शील

कुलपालिआएँ पेच्छह जोव्वणलाअण्णविब्भमविलासा
पवसन्ति व पवसिए एन्ति व पिए घरं एन्ते ॥ ८६५ ॥

यह देखिए कुलीन स्त्री: पति जब प्रवासगामी होता है त्यों ही यौवन, लावण्य, विभ्रम एवं विलास उसके साथ चल पड़ते हैं और उसके घर लौटनेपर वे फिरसे साथ चले आते हैं।

४ : गृहकर्मपरा

अण्णासआइं देन्ती तह सुरए हरिसविआसिअकवोला
गोसे वि ओणअमुही अह सेत्ति पिआंण सद्दहिमो ॥ २३ ॥

अभिसार वेलापर वह अपने प्रिय को सैकड़ों आज्ञाएँ सुनाती हैं, किन्तु प्रातःकाल होने पर वह सिर झुकाकर काम करती है और सन्देह होता है कि क्या यही वह प्रिया थी!

५ : पतिव्रता

चत्तरघरिणी पिअदंसणा अ तरुणी पउत्थवइआ अ
असई सअञ्जिआ दुग्गआ अ ण हु खण्डिअं सीलम ॥ ३६ ॥

बड़े चौके में उसका घर है; वह तरुणी है, सुन्दरी है। उसकी पड़ोसनियाँ रण्डियाँ हैं; उसका पति प्रवासपथिक है, कौटुम्बिक दुर्दशा आ बीती है तब भी उसने अपने शील को च्युत होने नहीं दिया है।

ज्येष्ठा व कनिष्ठा :

आलंकारिकों के द्वारा स्वीया नायिका मे ज्येष्ठा एवं कनिष्ठा नामक उपभेदों की कल्पना की गई है; भारत वर्ष की बहुपत्निक प्रथाविशेष के वे द्योतक है। संस्कृत साहित्य तथा लोककथाओं मे इन नायिकाओं का दर्शन बारम्बार होता है।

वात्स्यायन (४·२) कहता है कि : ज्येष्ठा का तात्पर्य प्रथम पत्नी है और कनिष्ठाएँ उसकी सौतें। ज्येष्ठा अपने पति तथा सौतों के साथ किस तरह का आचरण रखे इसका विवरण एक अध्याय द्वारा उसने दिया है। सम्मान की दृष्टिसे ज्येष्ठा अवश्य ही श्रेष्ठ है। साधारणतः वह मध्या अथवा प्रौढ़ा होती है। यौवन के प्रारम्भिक अभिसार की बहार के उसके दिन बीते होते हैं।

केवल कनिष्ठा सौतोंपर ही नहीं बल्कि प्रसङ्गोपात्त पति को भी अपने अधिकार से मुठिया में रखने की तथा उसके प्रति अनादर दिखाने की भी सामर्थ्य उसके पास होती है। ज्येष्ठा केवल **एक ही** होती है, तथापि कनिष्ठाएँ कई हो सकती हैं। यद्यपि कनिष्ठा का कौटुम्बिक एवं धार्मिक स्थान गौण श्रेणी का होता है तथापि आसक्त पति उसका दैवत होता है।

गाथा सत्तसई (क्र. ७९) की ज्येष्ठा का निम्नप्रस्तुत उदाहरण देखिए :

हलफलण्हाणपसाहिआणँ छणवासरे सवत्तीणम्
अज्जाए मज्जणाणाअरेण कहिअं व सोहग्गम् ॥

त्यौहार के दिन बड़े उल्लास के साथ उष्ण एवं सुगन्धि जल से नहाधोकर तथा साजशृङ्गार कर सौतें तत्पर बनीं; ज्येष्ठा-श्रेष्ठा पत्नी-ने स्नान के प्रति अनादर दिखाकर अपना सौभाग्य प्रगट किया।

मत्त यौवन की मूर्ति सौत घर आनेपर ज्येष्ठा की स्थिति बड़ी अनुकम्पनीय एवं दयनीय होती है। गाथा सत्तसई (क्र. ३८२) का उदाहरण देखिए :

उट्ठन्तमहारम्भे थणए दट्ठूण मुद्धवहुआए।
ओसण्णकवोलाए णीससिअं पढमघरिणीए ॥

पहले ही से नववधु के उन्नत एवं भरे स्तन देखकर पिचके गालों की ज्येष्ठा-प्रथम गृहिणी-ने निःश्वास छोड़ा।

उत्तरकालीन आलंकारिकों ने इन संज्ञाओं के अर्थों में परिवर्तन किया है। रसमञ्जरीकार कहता है :

परिणीतत्वे सति भर्तुरधिकस्नेहा ज्येष्ठा। परिणीतत्वे सति भर्तुर्न्यूनस्नेहा कनिष्ठा।

वात्स्यायन काल में जो अधिकार में श्रेष्ठ थी, वही ज्येष्ठा कहलायी जाती थी; उसकी नियंत्रणा के नीचे कनिष्ठा सौतों को समुराली करनी पड़ती थीं। उत्तरकालीन अलंकारिकों की परिभाषा के अनुसार ज्येष्ठा को पीछे रुकना पड़ा क्यों कि पति के प्रोत्साहन के कारण मदमाती जवानी से ऐंठनेवाली कनिष्ठाएँ आगे बढ़ीं। तब भी विवाह के ज्येष्ठत्व के कारण ज्येष्ठा को प्राप्त हुए कौटुम्बिक, धार्मिक एवं व्यावहारिक श्रेष्ठ अधिकारों में कोई विशेष परिवर्तन हुआ है सो दिखता नहीं है।

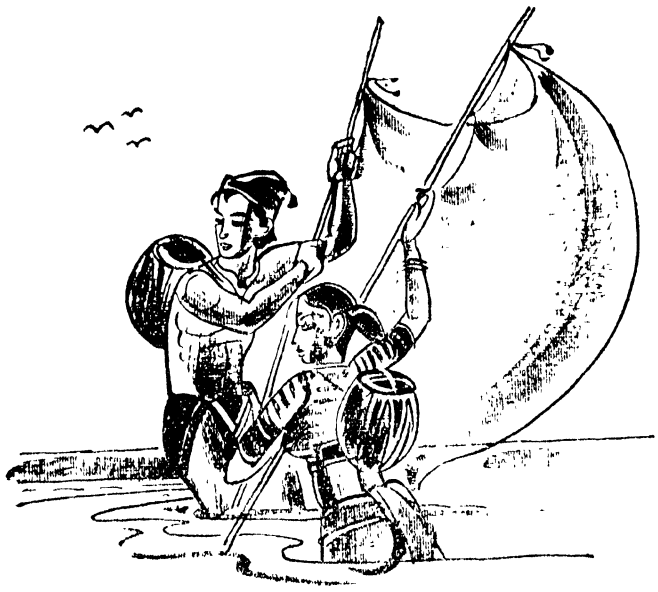

मुग्धा, मध्या, प्रगल्भा :

रुद्रभट शृङ्गारतिलक (१·३४) मे कहता है :

मुग्धा मध्या प्रगल्भा च स्वकीया त्रिविधा मता ।

स्वीया नायिका के उपभेद हैं : मुग्धा, मध्या एवं प्रगल्भा।

स्वीया नायिका इन भेदों की जननी है यह उक्ति अधिक महत्त्व की है। इस परिभाषा के बारे मे एक महत्त्व की सूचना है कि यद्यपि नायिकाओं का यह वर्गीकरण वयोमर्यादा के साथ अनुबद्धित है तथापि उसकी स्थापना का आधार वह नही है; अन्यथा अन्या तथा सामान्या इनके बारे में भी वही नियम लागू किया जाता। आलंकारिकों की पद्धति जरा अलग दिखाई देती है, पहले वे अपने इस सिद्धान्त का आश्रय धारण करते है तथापि बाद में समय समय पर उसे भूल जाते है। उदाहरणार्थ : अष्टनायिकाओंमें से कुछ नायिकाएँ अन्या अथवा सामान्या होने की सम्भाव्यता है। वहाँ स्वीयादि भेद निर्मिति नहीं हुई है तथापि मुग्धादि के भेदों को स्थान दिया है। यौवन एवं मन्मथ इन का संचार तथा रतिविषयक प्रतिक्रिया एवं ईर्ष्या इत्यादि इन वर्गों के लक्षण सम्मिश्रित तथा व्यक्तित्व के अनुरोध से कम अधिक प्रमाण मे अभिव्यक्त होने के कारण, और परिभाषाकारों का ज्ञान एवं अनुभव मर्यादित होने से इस प्रकार की त्रुटियाँ होना सम्भव है।

भरत ने नाट्यशास्त्र में (२३ : ४०–४६) यौवन की तीन अवस्थाएँ तथा लक्षण बनलाए हैं। सुविधा के लिए उनके अनुक्रम में हेरफार कर निम्नलिखित अनुच्छेद को उद्धृत किया जा रहा है :

पीनोरुगण्डजघनस्तनाधरं कर्कशं रतिमनोक्षम
सुरतं प्रति सोत्साहं प्रथमं तद यौवनं विद्यात ॥ ४१ ॥
नात्यर्थं क्लेशसहा नच कुप्यति न हृष्यति प्रतिस्त्रीषु
सौम्यं गुणेषु आसक्ता नारी नवयौवना ज्ञेया ॥ ४६ ॥
गात्रं पूर्णावयवं पीनौ च पयोधरौ नतं मध्यम
कामस्य सारभूतं यौवनमेतद् द्वितीयं तु ॥ ४२ ॥
किंचित्करोति मानं किंचिन् क्रोधं च मत्सरं चैव
क्रोधे च भवति तूष्णीं यौवनभेदे द्वितीये तु ॥ ४७ ॥
सर्वश्रीसंपूर्णं रतिकरमुन्मादनं बहुगुणाढ्यं
कामायापितशोभं यौवनमेतत्तृतीयं तु ॥ ४३ ॥
रतिसंभोगे दक्षा प्रतिपन्नासूयिनी गुणाढ्या च
अनिभृतगर्वितचेष्टा नारी ज्ञेया तृतीये तु ॥ ४८ ॥

ओंठ रसीले, गाल गोल, स्तन घने, व नितंब पुष्ट बने और सम्भोग के प्रति उत्साह का अनुभव होने लगा, यह यौवन की प्रथमावस्था। इस अवस्था में मन में असूया का अंश मात्र

भी नहीं होता है। गात्रों के विकास के कारण काम का सार सर्वस्व अङ्गप्रत्यङ्ग में भर जाता है, यह यौवन की द्वितीयावस्था। इस अवस्था में चित्त में मान, क्रोध व मत्सर इनका किञ्चित् सञ्चार होता है। यौवन की तृतीयावस्था में गात्रों एवं गुणों का संपूर्ण विकास होता है। मन में दक्षता व दृढ़ता निर्माण होती है और स्पर्धा बिलकुल असह्य होती है।

भरत ने वृद्धा का वर्णन किया है। लेकिन अपना उससे कोई सरोकार नहीं है। तथापि यौवन के उद्गम एवं विकास के साथ ही तज्जन्य मानसिक प्रतिक्रियाओं का यह दिग्दर्शन बड़ा मार्मिक एवं सर्वाङ्ग परिपूर्ण है। उत्तरकालीन आलंकारिकों ने केवल इन अवस्थाओं का नामाभिधान किया तथा आलंकारिकों ने उनके लक्षण नियत किए हैं। पद्मश्री ने नागर सर्वस्व में (१०:२-३) इन अवस्थाओं को वयोमर्यादाओं के अनुसार संज्ञाएँ प्रदान की हैं:

बालेति गीयते नारी यावन षोडशवत्सरम्
ततः परं च तरुणी सा यावन् त्रिंशतं भवेन् ॥
तदूर्ध्वमभिरूढा स्याद्यावन् पञ्चाशतं पुनः
वृद्धा ततः परं ज्ञेया सुरतोत्सववर्जिता ॥

सोलहवीं तक बाला, तीसवीं तक युवति, पचासवीं तक अभिरूढ़ा: इन संज्ञाओं का अभिधान स्त्रियों के लिए उनकी वयोमानानुसार किया है।

षोड्श वर्ष की बालिका को कई अवस्थाओं मे से गुज़रना पडता है। कामशास्त्रकारों की अपेक्षा धर्मशास्त्रकारों ने विवाहयोग्यता के अनुपात से इस वय के सूक्ष्म वर्गीकरण नियत किए है। जैसे अष्टवर्षा भवेत् कन्या, नव वर्षा तु रोहिणी आदि। स्त्री को अपने स्त्रीत्व की संवेदना होने के कालतक वह नग्निका मानी जाती है। भला, यह संवेदना कब होती है? अधिकांशतः यह देशकाल परिस्थितिपर अवलम्बित होता है। उपरान्त यौवन के स्वाभाविक उठाव-चढाव के चिह्नों से काया मण्डित होना शुरू होती हैं। मन मन्मथ की संवेदनाओं से कसकना प्रारम्भ होता है। विवेक का प्रश्रय न लेते हुए पद्मश्री लिखता है:

निदाघशरदोर्बाला पथ्या विषयिणां भवेन्
हेमन्ते शिशिरे योग्या (=तरुणी) प्रौढा वर्षावसन्तयोः ॥

विषयकामना के संतोष का ऋतुमानानुसार पथ्य निम्नप्रस्तुतसा हो: ग्रीष्म व शरद में बाला, हेमन्त व शिशिर में तरुणी और वसन्त में प्रौढा का उपभोग हितावह होता है।

इस पथ्य का अंगिकार करने का तात्पर्य होगा कि एक बड़ा जनानखाना तत्पर रखे। आगे वह कहता है कि 'बाला वर्धयते बलम्' तथा 'प्रौढा तु कुरुते जराम्'। सम्भवतः शृङ्गार की दृष्टि से अक्षम ऐसी बालिकाएँ पद्मश्री को अभिप्रेत होंगी सो प्रकट नहीं होता। वृद्धा के मन की आंतरिक ग्रन्थि में, भले, आसक्ति गुप्त रूप में रही हो तथापि उसके पास आवेग अथवा उत्सवप्रवृत्ति का अभाव होने के कारण उससे समागम करनेपर युवा को जरत्व प्राप्त होता है, इस प्रकार की चेतावनी कामशास्त्रकार देते हैं। जाने उन से दूर रहने के लिए किसी शास्त्रकार की ही आवश्यकता है!

प्रतापरुद्रीय (१.५६) में विश्वनाथ कहता है:

उदयद्यौवना मुग्धा लज्जाविजितमन्मथा
लज्जामन्मथमध्यस्था मध्यमोदितयौवना
स्मरमन्दीकृतव्रीडा प्रौढा संपूर्णयौवना ॥

मुग्धावस्थामें शरीर में यौवन का सञ्चार होता है; जब कि सम्भोग की भावनापर संकोच का प्रभाव होता है। मध्यावस्था में यौवन का विकास होता है: जब कि सम्भोग व संकोच का प्रमाण समान होता है। प्रौढावस्था में गात्रों का संपूर्ण विकास चरमसीमा पाता है और स्मरप्रभाव के कारण सङ्कोच लुप्त हो जाता है।

नाट्यशास्त्रकार भरत ने निवेदित की हुई यौवन की तीन स्थितियाँ, कामशास्त्रकारों द्वारा वयोमर्यादानुसार कल्पित बाला, तरुणी एवं अभिरूढा यह तीन अवस्थाएँ और मुग्धा, मध्या एवं प्रगल्भा नामक साहित्यशास्त्रकारों द्वारा सर्जित तीन श्रेणियाँ एक ही हैं, इसका बोध इस विवेचन के द्वारा होगा।

मुग्धा, मध्या एवं प्रौढा, यह स्त्री जीवन की नैसर्गिक स्थितियाँ हैं। प्रकृति की प्रेरणा से इनकी सर्जनाएँ होती हैं तथा अपनी प्रत्येक अवस्था के हेतु की पूर्ति होते ही विभिन्न दूसरी अवस्थाओं में वे विलीन होती हैं। बालिका के जीवन में लावण्य का पदन्यास झङ्कृत होता है। अनन्तर उसकी सुषमा का उत्कर्ष होता है। वक्ष उन्नत होते हैं, नितम्ब एवं जाँघें पुष्ट तथा विशाल बनते हैं। संसृति केवल विकासशीलता के सिद्धान्तानुसार विलास के प्रयोजन की दृष्टि से यह सब नहीं करती; वस्तुतः उस प्रत्येक स्थिति की उद्देश्य की परिपूर्ति करने के लिए इस सामग्री को जुटाया जाता है। आलंकारिक केवल शृङ्गार की ओर अपने को केंद्रित करते हैं। अस्तु!

पुष्प की कलिकावस्था में उसके मुकुट के पुष्पदल आवरण कोश के सम्पुट में सिमटे हुए रहते हैं। सुमन-जीवन की यह कलिकावस्था स्त्री जीवन की बाल्यावस्था मानिए। बीज कोश की आन्तरिक शक्तियाँ ज्यों ज्यों स्फुरित होने लगती हैं, त्यों त्यों बाह्यकोश के आवरण शिथिल होना शुरू होते हैं। यों मालूम होने लगता है कि पँखुड़ियाँ खुल पड़ी हैं और फूल ने विकासावस्था धारण की। उपरान्त कुसुम का सौन्दर्य प्रस्फुटित हो कर उसका चरम विकास होता है; सुगन्ध जहाँ तहाँ महकना प्रारम्भ करती है। समझिए, यह मध्यावस्था है। फूल की जाति विशेष तथा जीव मान के अनुपातानुसार उसकी सुषमा एवं सुगन्धि कम अधिक समय तक थोड़े बहुत प्रमाण में उत्कर्षावस्थापन्न होती है; कहा जा सकता है कि यह प्रौढ़ावस्था है। अनन्तर पँखुड़ियाँ कुम्हलती हैं; निस्तेज होती हैं। अन्त में झड़ने की क्रिया शुरू होती है। सौरभ विरल होकर समाप्त हो जाता है; यह रही वृद्धावस्था। आम्रवृक्ष मञ्जरित होता है, सरबरे लटकते हैं, गुराँधे बनते हैं और अन्त में परिपक्व आम्रफल तैयार होता है। मञ्जरी को बाल्यावस्था, सरबरे को मुग्धावस्था, गुराँधे को मध्यावस्था और पक्व फल को प्रौढ़ावस्था नामक संज्ञाओं का, कम अधिक अपवादात्मक भेद छोड़ने के बाद, उपयोग किया जा सकता है।

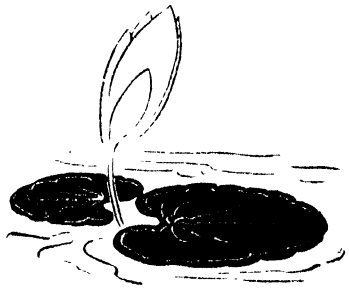

मुग्धावस्था स्त्री जीवन में तरङ्गित होनेवाली एक हिलोर है। वह उठी न उठी त्यों ही सदा के लिए विलीन हो जाती है। विशेष रूप से इस की सत्यता हिन्दुस्तान जैसे उष्ण वातावरण एवं सनातनी प्रवृत्तिप्रधान बालविवाही देश में अनुभूत होती है; इसका कारण भी यह रहा कि यहाँ के वातावरण में फलोन्मुखता बड़ी त्वरा से पाई जाती है। इस के बावजूद इधर के सामाजिक रूपान्तरों के कारण स्त्री को प्रजोत्पादन के कार्य के लिए बड़ी छोटी वय में लगाया जाता है। क्या कवि और क्या साहित्य तथा काम शास्त्रकार, ये सब इन अवस्थाओं की विवेचना उपभोगक्षमता की दृष्टि से करते हैं। मानो यह भी बहुत कम है; वे सब, और अमर प्रवृत्ति के पुरुष स्त्री की नैसर्गिक उपभोगप्रियता कृत्रिम उपादानों की सहायता से उत्तेजित करते हुए उपभोगक्षमता की नैसर्गिक कालमर्यादा को और भी घटाते हैं। सत्य है कि धानगर्मी दे कर फल जल्दी पक जाता है लेकिन उतनी ही तेजी से वह सड़ जाता है।

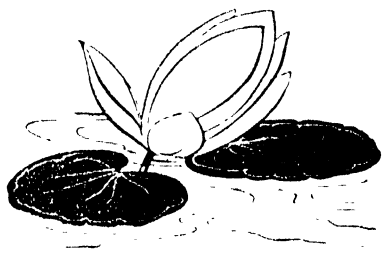

मुग्धा :

रसमञ्जरी में भानुभट्ट ने कहा है :

अङ्कुरित यौवना मुग्धा॥ सा च ज्ञातयौवनाऽज्ञातयौवना च॥
सैव क्रमशो लज्जाभयपराधीनरतिनवोढा॥ सैव क्रमशः सप्रश्रया विश्रब्धनवोढा॥
अस्याश्चेष्टा क्रियाहियामनोहरा कोपे मार्दवं नवविभ्रमणे समीहा च॥

जिसका यौवन अङ्कुरित हुआ है, उसे मुग्धा कहिए। अज्ञात-यौवना और ज्ञात-यौवना मुग्धा के उपभेद हैं। मुग्धा को यौवन की संवेदना होने के समय उसका विवाह किया जाता था।

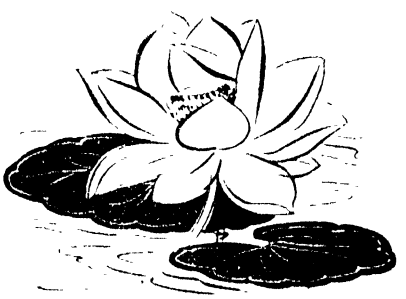

भय, पराधीनता तथा लज्जा इन के कारण रति के प्रति नवोढ़ा की प्रवृत्ति संकोचशीला होती है। बाद में उसके मन में अपने प्रति विश्वास निर्माण होकर लज्जा दूर होती है। संकोचशीलता के कारण उसके अविभावों में आकर्षक मनोहारिता तथा मनोभावनाओं में मृदुता निवास करती है।

इन उपभेदों के लक्षणों का परिचय देते हुए अनन्त पण्डित कहता है :

सप्रश्रया प्रश्रयो विनयः गात्राकुञ्चनमिति यावत्। तत्सहिता।
यद्वा किंचिद्विश्वासं प्राप्ता विश्रब्धनवोढेत्युच्यते।

आलिङ्गन करने पर यौवन की अज्ञात संवेदना तथा आदर और विनय इनके प्रभाव के कारण जिसके गालों का आकुंचन होता हैं वह सप्रश्रया; और अपने स्वयं तथा प्रियकर के प्रति विश्वास निर्माण होने से तथा ऐसी संवेदनाओं से परिचित होने से जो बिना हिचकिचाहट से आलिङ्गन कर लेती है, वह विश्रब्धा।

इसीके आधार से मुग्धा के निम्नानुसार उपभेद सुझाए गए हैं :

मुग्धा

अज्ञातयौवना — ज्ञातयौवना

सप्रश्रय-नवोढा — विश्रब्ध-नवोढा

रसमञ्जरी की परिभाषा और विवरण के प्रति कई आक्षेप उठाए गए है। रसमञ्जरी तथा अन्य ग्रन्थों में केवल स्वीया का उपभेद मानकर मुग्धा का उल्लेख पाया जाता है। व्यङ्ग्यार्थ कौमुदी में अनन्त-पण्डित ने कहा है :

एवं च पतिमात्राऽनुरागत्वे सति प्रत्यग्रयौवनवत्वमिति फलितं मुग्धालक्षणं।

शृङ्गारमञ्जरीकार की राय में केवल वय मात्र को इस वर्गीकरण का एकमेव लक्षण मानना अयोग्य होगा; क्यों कि ऐसी परिस्थिति मे यदि अंकुरित यौवन मुग्धा का प्रधान लक्षण माने तो स्वीया की भाँति अन्या एवं सामान्या इन्हे भी यह वर्गीकरण लागू करना होगा। आक्षेप बड़ा तथ्यमूलक है। प्रतापरुद्रीय के लज्जाविजितमन्मथा इस लक्षण के प्रति भी आक्षेप उठाया है। लज्जा के द्वारा मन्मथपर विजय पाने की सम्भाव्यता अज्ञातयौवनावस्था में नहीं होती; क्यों कि यद्यपि उस में यौवन के अंकुर उद्भूत होते हैं तथापि अबतक मन्मथ के उदय का अभाव होता है। अतः मुग्धा के सभी उपभेदों को यह लक्षण चरितार्थ नहीं होता। समीक्षकों की राय है कि यह सही कि उसमें यौवन तथा मन्मथ का सञ्चरण होता है, परन्तु वह स्वयं उनके प्रति अनभिज्ञा होती है। शृङ्गारमञ्जरी की संशोधित परिभाषा है :

पुरुषविशेषानभिज्ञा मुग्धा।

पुरुष की प्रवृत्ति के प्रति जो अनभिज्ञा होती है, उसे मुग्धा कहिए।

साहित्य दर्पण में (३.५८) मुग्धा, के लक्षण निम्नानुसार बतलाए है :

प्रथमावतीर्णयौवनमदनविकारा रतौ वामा।
कथिता मृदुश्च माने समधिकलज्जावती मुग्धा॥

यौवन ने जिसकी देह में तथा मदन ने अन्तःकरण में अभी अभी पदार्पण किया है, जिसका मान मृदु है, चित्त में लज्जा का विशेष प्रादुर्भाव है और जो रतिअभिसार को प्रतिकूल अथवा अनुत्सुक है, वह मुग्धा है।

भरत ने निवेदित किए हुए लक्षणो को यहाँ अनुसान्धित करना चाहिए: वह सौम्य गुणों के प्रति आसक्त होती है तथा उसके मन में विपक्षियों के प्रति ईर्ष्या का अभाव होता है। यह लक्षण बड़ा सार्थ एवं यथार्थ है। अपनी मृदुता के कारण उसे किसी भी प्रकार की जबर्दस्ती, कड़ाई न पसन्द आती है, न उसे वह निभाना चाहती है। वैसे ही लोकव्यवहार तथा स्पर्धा के प्रति वह अनभिज्ञा होती है; इसीलिए वह ईर्ष्या से कोसो दूर होती है।

यौवन तथा मन्मथ निरन्तर एक साथ मानव देह में प्रवेश पाते हैं। पुरुष में उसकी प्रतिक्रिया के रूप मे प्रभाव, सामर्थ्य और आक्रमणशीलता का उद्भव होता है, स्त्री मे उसके फलस्वरूप उत्तेजकता और लालित्य का अविष्कार होता है।

गाथा सत्तसई का कवि (क्र. ६४८) कहता है :

अणुदिअहकआभोआ जह जह भणआ विणिंति कुमरीए
तह तह लद्धोआसो व्व वम्महो हिअअमाविसइ ॥

कुमारिका का स्तन ज्यों ज्यों वृद्धिगत हो उन्नत हो रहा है, त्यों त्यों मन्मथ अवकाश पा कर उसके हृदय में प्रवेश पा रहा है।

मुग्धा का तात्पर्य है : अकृत्रिम, अज्ञ, बावरा, चकित, भ्रमित, भोला, मनोहर, मूढ़, अन्यमनस्का सरल, सीधा तथा संदिग्ध। अननुभूत ऐसे शारीरिक विकास के स्पंदन के कारण और मानसिक विकल्प तथा अन्तर्मन में प्रादुर्भूत होनेवाली प्रेरणा की संवेदनाओं के कारण संकोचशील एवं सम्भ्रमशील, अकृत्रिमता के कारण चकित तथा औत्सुक्य के कारण प्रेरित; अज्ञेयता के कारण संकुल तथा लज्जा के कारण विकल, इस प्रकार की प्रवृत्ति जहाँ है, उसे मुग्धा कहिए।

शैशव एवं यौवन की तरल सीमा रेखापर उड्डीन होनेवाली इस सुखस्वप्नसदृश नायिका ने अतीत के कई पर्वों से अबतक कलाकारों को मोहित किया है। यह अवस्था ही मानिए ऐसी है। समझ में आता है लेकिन उलझन सुलझती नहीं है। मन जानता है बल्कि बर्ताव अलग होता है। मन ख्याल कर सकता है लेकिन न उसे अपनाया जा सकता है न समझ में लिया जा सकता है।

(प्रथमावतीर्ण यौवना :) शैशव काल में संपूर्ण स्वतंत्रता से खेलकूद में रममाण होनेवाली बालिका के हृदय में यौवन का पदक्षेप होते ही बड़ी क्रान्ति मचती है। स्तनकलिका उत्फुल्लित होने लगती है। भला, है भी यह क्या बला? इन्हें अब छिपाना चाहिए, सो धारणा मन में छुपी छुपी झंकार उठाती है। कटि तथा मध्यभाग कृश होते है, और उस में कभी कही लचक भी मार जाती है। स्कन्ध मांसल व नितम्ब पुष्ट होना प्रारम्भ होते है; उन्हे सुडौल की हिलोर रेखा प्राप्त होती है। यह समृद्धि वृत्ति में सङ्कोच बनकर मुग्धा की व्रीड़ा को अधिक घनी बनाती है। (वयो मुग्धा:) पहले तो वह बड़ी नीड़रता में उधम दौड़ मचाती थी, खुली आवाज में ठहाके लगाया करती थी, किसी की भी आँखो में आँखे लड़ाने में उसे संकोच न होता था, अल्पपरिचितों से दुलार करवा लेती थी। लेकिन अब? शैशव के पदचिह्न अब भी बाकी होने के कारण वह चाहती है कि फिर से उधम मचाये। हाँ, लेकिन अब उसके लिए आह्वान के बदले आन्तरङ्गन का चुनाव किया जाता है। बारम्बार साड़ी के पल्ले को हौले से सम्हालती है। आवरण के ऊपर से, हर स्थानपर से रह रहकर हौले से हाथ फिराकर उन्मीलित गात्रों के आवरण के प्रति वह अपनी दत्तचित्तता दिखाती है। उन्नत अवयव विशेष अवगुण्ठन में छिपा कर रखूँ इस प्रकार एक मन कहता है; तो कभी कभी जीवन की चिरसंचित धरोहर अपने पास भी है, और उसे दूसरों को क्यों न दिखाती जाऊं, इसप्रकार की सुप्त अलक्षित ध्वनि दूसरा मन पुटपुटाता है। अब आँखे बड़ी मतवाली बनी है, पर उन में अबतक तीखापन भरा नहीं है। कभी-कभी वह टकटकी लगाती है लेकिन उसकी रौनक गायब हुई है। उसके आँखो की हिरनी सी दौड़, चकित, चपल तथा निष्पाप है। आसपास में धनुष्यबाण लगाकर तत्परता से तैयार बैठे छिपे व्याधों की आहट वह अबतक समझी नहीं है। इर्दगिर्द में घूमनेवाले पुरुषों की आँखे अपने को तरसकर देखती है इसे वह अवलोकित मात्र करती है तथापि उन आँखो के तीर क्या चाहते है इसका पता जानने को वह अनजानी है। अब तो वह भ्रुकुटिभङ्ग के साथ अपाङ्गावलोकन कर सकती है तथापि उसके अन्वयार्थ और कारण परिणाम के ज्ञान से वह योजनों दूर बैठी है, उस में आवाहन का अभाव है लेकिन स्वसंरक्षण की तत्परता का भाव अवश्य होता है। इस बार का स्मित गाल तथा ओठों के सूक्ष्म तरल स्पन्दन से प्रस्फुटित होता है। उसमें 'हम जानती है' का भाव निहित होता है परन्तु विशेष अभिप्राय की पहचान नहीं होती। यौवन तथा मन्मथ एक साथ जोड़ी से और हौले हौले उसकी काया में प्रवेश करना शुरू करते है, त्यों त्यों उस में जीवन की शरीरिणी संवेदना के अभिज्ञान का स्पन्दन प्रारम्भ होता है।

अभी अभी उसके अन्तर्याम में मदनराज के राज्यारोहन समारोह के अभिषेक प्रारम्भ हुए है, परंतु उसके राजकाज की शुरुआत नहीं हुई है। उसके हावभाव में विभ्रम की मनोहारी छटाऐं दृग्गोचर होने लगी है।

मन विलास की अस्पष्ट परन्तु तरल कल्पना से अनुरञ्जित होने लगा है। अब सहेलियों के संग गुडिया बुढ़िया की खेलखिलैयें की बातें करने की अपेक्षा मिलनाभिसार की गपशप चुपके चुपके करती भी दिखाई देती है। शैशव की भोलीभाली आज्ञापालनता में नवयौवन का कौतूहल सम्मिश्रित होता है। अब भी उसके अनजानेपन से फायदा उठाते हुए बाह्यतः भद्र तथापि अन्तरंग से लम्पट एवं विषयी व्यक्ति प्रसंगोपात्त प्रतीकात्मक बाह्य सम्भोग का आनन्द अनुभूत करते हैं। यद्यपि उसका मन निष्काम एवं निष्पाप होता है तथापि अननुभूत संवेदनाओं के कारण उसे सुख अवश्य होता है। यह सब होने के बावजूद भी वह अपने कौमार्य के संरक्षण के प्रति बड़ी दत्तचित्त होती है। अधिक सटाई खेलनेवाले अपने पति के संग से भी वह अपने को दूर रखती है। पति की अन्य आज्ञाओं के प्रति वह बड़ी जागरूक होती है। वात्स्यायन (कामसूत्र : ४-५-५७-५६) लिखता है कि: अन्या नायिका को अपनी मनोवाञ्छना निवेदित करने के लिए नायक मुग्धा पत्नी की आयोजना करे। इतनी भोली होती है वह! मानो ऐसे संकेतों को ले जाने में बड़ा मज़ा होता है; बेचारी इसी ख्याल में होती है। लज्जा और भय इनके प्रादुर्भाव के कारण वह अब तक यौवन का आनन्द उठाने में असमर्थ होती है। देखिए:

मुग्धा कैसी होती है? गाथा सत्तसई (क्र. १७४) में कवि कहता है :

वङ्कच्छिपेच्छिरीणं वङ्कुल्लविरीणँ वङ्कभमिरीणम्।

तिरछी नजर से देखती है, लाड़ में आकर मीठा मीठा बोलती है, बड़ी लचक लपककर चलती है।

और पति जरा धर्माट-गढ़बाजी (गा. स. ६४०) करे तो?

पुच्छिज्जन्ती ण भणइ गहिआ पप्फुरइ चुम्बिआ रुअइ।

कुछ पूछा तो बोलती भी नहीं, पकड़ा तो छूट भागना चाहती है, और चूमा तो रोना शुरू करती है।

घर के बड़े आदमियों के डर के मारे मुझे मिलने में उसे सकोच होता होगा ऐसी कल्पना कर अगर पति कहीं अन्यत्र मिलन की आयोजना करे तो उसके अनजाने और भोलेपन के कारण किसी न किसी तरह से रहस्य का भण्डाफोड़ होता ही है। देखिए (गा. सा. क्र. १४५) कवि कहता है :

सहिआहि ँ भण्णमाना थणए लग्गं कुसुम्भपुप्फं त्ति
मुद्धवहूआ हसिज्जइ पप्फोडन्ती णहवआइं॥

मुग्धा कुसुम्भकुञ्ज में अपने प्रिय से मिली। उसकी दिल्लगीबाज सहेलियों को इस बात का पूरा का पूरा अहवाल मिला। उन्होंने बड़ी चालाकी से उसके स्तनोंपर अंकित नखक्षत देखे और उसे कहा : देख, वहाँ कुसुम्भ पुष्प चिपके हैं। बेचारी को नखक्षतों का पता नहीं था। कुछ वेदना अवश्य थी। तब वह स्तनोंपर चिपके हुए फूलों को उँगलियों से हटाने लगी। यह देख उसकी सखियाँ क़हक़हे लगाने लगीं।

इन प्रसङ्गों को पार करते करते उसकी सखियाँ अवकाश पाकर उसे शयनमन्दिर में पहुँचाती हैं। उनकी इस आयोजना का पता पति महाशय को होता है। गाथा सत्तसई (गा. स. क्र. ६४६) का कवि कहता है :

अलिअपसुत्तवलन्तम्मि णववरे णववहूअ वेवन्तो
संवेल्लिओरुसंजमिअवत्थगण्ठि गओ हत्थो॥

नव वर नींद का बहाना कर बिछौने पर लेटा था। नव वधु उसके पास काया को सिकुडवा कर लेटी थी। मानो नींद में ही उसने अपनी करवट बदल दी; त्यों ही उसने अपनी ओढ़ी हुई साडी जाँघों के पास ज़ोर से लिपट ली और थरानेवाले हाथ से पल्लू की गाँठ को पकड़ कर रखा।

कामक्रीड़ा के प्रति अब तक उसके मन में जाने कैसा डर छिपा बैठा है (रतौ वामा, शयने पराङ्मुखी); कारण जो अज्ञात या अपरिचित है, भले, उसके प्रति मन में चाह भी क्यों न हो, तब भी वह अयोग्य है: इस प्रकार की भोली कल्पना में ज्ञातयौवना सप्रश्रयनवोढ़ा विचरण करती है!

प्रियकर अधिक सटाई लिपटाई करने लगा तब शृङ्गारतिलक में मुग्धा कहती है :

विरम नाथ विमुञ्च ममाञ्चलं
शमय दीपमिमं समया सखी ॥

अजी, जरा ठहरिए तो: जरा पल्ला तो छोडिए। दिया बुझाने का भी खयाल नहीं करते हैं; देखिए तो, मेरी सहेली पास ही में तो है।

इस अवसर पर अपनी ओर कोई देखता है यह समझ कर वह लज्जित हुआ, शर्मिन्दा बना; त्यों ही मौक़ा पाकर वह वहाँ से उठ भागी।

मुग्धावस्था की मर्यादा की सीमा रेखा का दायरा कहाँ तक? ये दिन कब तक रहेंगे? पति के संग दिन ब दिन परिचय बढ़ता जाता है, त्यों त्यों नवोढ़ा को उसके और अपने प्रति भी विश्वास होने लगता है। एकान्त में पति के प्रति होनेवाला संकोच ज्यों ही मिट चुका और खुलापन जागा त्यों ही, मानिएगा कि, मुग्धावस्था समाप्त हो चुकी!

हँसते खेलते, रोते धोते, मुग्धा का प्यार भरा संसारिक जीवन शुरू होता है। पति के प्रति मन में पहले अनुराग और उपरान्त आसक्ति का निर्माण होता है। उसके गर्भ रहता है। चाँदनी रात में झूले पर बैठ कर सहेलियाँ उसे पूछती हैं (गा. स. क्र. १५):

किं किं दे पडिहासइ? सहीँहि इअ पुच्छिआए मुद्धाए।
पढमुग्गदोहणीएँ णवरं दइअं गआ दिट्ठी ॥

मुग्धा को अभी अभी गर्भ रहा था। सखियों ने पूछा, अरी तुझे क्या भाता है? पत्नी के इस कौतुक को देखते हुए पास ही में पति महाशय खडे थे। सखियों का प्रश्न सुनते ही उसकी आँखों ने पति की ओर एक तिरछी नजर दौडाई। उसने मानो सुझाया था, हाँ मुझे केवल अपना पति चाहिए, उसीसे मेरा प्यार है।

पगली बेचारी बिल्ली की नज़र लगी थी पर, लेकिन अबतक बड़गा नहीं देखा! प्रसूति वेदनाओं का काल बीतनेपर बारहीं के समय उसकी दिल्लगीबाज सखियाँ सेज के पास इकट्ठा हुई और उसे कहने लगीं: अरी, जरा उनका नाम तो ले (गा. स. क्र. १२३)

हासाविओ जणो सामलीअ पढमं पसूअमाणाए।
वल्लहवाएण अलं मम त्ति बहुसो भणन्तीए ॥

सहेलियाँ बार बार आग्रह करने लगीं त्यो ही उसने बडी संत्रस्तता से कहा—छि: छि:, उसे मेरा पति मत कहिए। हाय मेरी मैया, मैं तो उसके नाम को कभी न छूँगी! प्रसूति वैराग्य के उसके ये शब्द सुनकर ऐसी बातों की जानकार सहेलियाँ हँसी के ठहाके लगाती हैं। ये भी दिन बीत जाते हैं। प्रसूति के उपरान्त पति और पत्नी, आरोग्य एवं संततिनियमन का विचार करते हुए कुछ दिनोंतक व्रत पर थे। पत्नी की गिनती के अनुसार व्रत पालन की मर्यादा समाप्त हो चुकी थी, तब भी पति महाशय का विराग ढहने के चिह्न दिखाई नहीं दिए। तब पत्नी ने चालाकी की। गाथा सप्तसई (क्र: २००) का कवि कहता है:

गेण्हह पलोअह इमं पहसिअवअणा पइस्स अप्पेइ।
जाआ सुअपढमुब्भिण्णदन्तजुअलङ्किअं बोरं ॥

लडके के दाँत आने लगे। दाँतों के निशानों का बेर पति को देते हुए पत्नी ने कहा: लीजिए, अजी ये देखिए तो, आप के लाडले की करतूत!

अब ऐसा माना जाए कि नायिका ने विश्रब्धनवोढावस्था में से मध्यावस्था मे प्रवेश पाया है।

रसमञ्जरी द्वारा मुग्धावस्था में अतिविश्रब्धनवोढावस्था नामक और एक उपभेद की सर्जना की है। नवोढा को अतिविश्रब्धा किस तरह कहा जाए? शृङ्गारमञ्जरी के अनुसार मुग्धा मे दो उपभेदों की कल्पना की है। प्रच्छन्नमध्या: जिस की लज्जामदन साम्यता का परिचय केवल उसके पति को होता है; और प्रकाशमध्या: जिसकी उपरोक्त समानता उसकी सहेलियों को भी ज्ञात होती है।

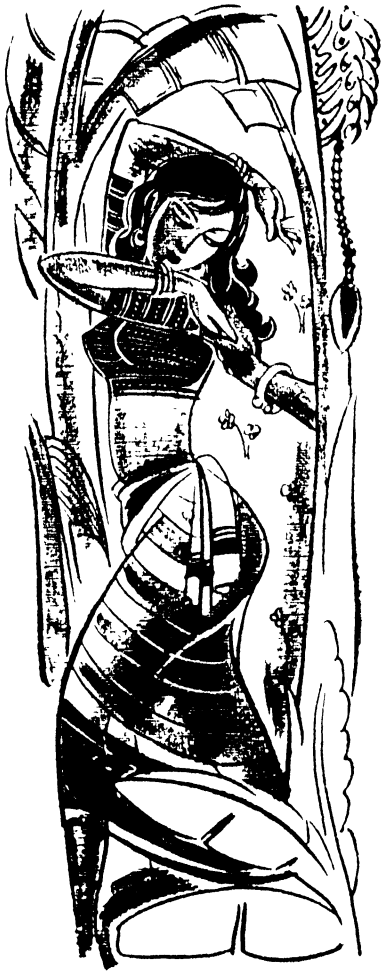

मध्या :

समानलज्जामदना यह मध्या का लक्षण है, इस प्रकार की सम्मति रसमञ्जरी ने दी है। शृङ्गारमञ्जरी ने भी इस लक्षण को मान्यता दी है। साहित्यदर्पण (३·५९) के अनुसार मध्या की परिभाषा है :

मध्या विचित्रसुरता प्ररूढस्मरयौवना
ईषत्प्रगल्भवचना मध्यमव्रीडिता मता ॥

मध्या में यौवन और मन्मथ का विकास पाया जाता है, तथापि अब भी संकोच का कुछ भाव शेष है। उसके वचन में प्रागल्भ्य का आंशिक अस्तित्व होता है और सुरत बेलापर उसकी वैचित्र्य की काङ्क्षा होती है।

मुग्धावस्था समाप्त हुई और अब मध्यावस्था का प्रारम्भ हुआ इसे समझना बड़ी कठिन उलझन है। न क्षण को आँका जा सकता है, न लक्षणों की मर्यादाएँ निश्चित की जा सकती हैं। प्रत्यूषा बेलापर अस्फुट जागृति में रक्तिम आभा प्रसृत होती है और हौले हौले वह मिट जाती है। प्रभात होने के समय वातावरण में कुहराकासापन होता है; जाड़े की सिहरण मिटती है लेकिन ठंडक अब भी शेष है। स्वप्नों का अन्त होता है, जागृति पास खड़ी होती है— लेकिन अबतक जीवन के व्यवहारों का प्रारम्भ अनुपस्थित है। प्रत्यूषा का प्रकाश मानिए अज्ञात यौवना की भावस्थिति; वैसे ही सान्ध्यकालीन प्रकाश को जानिए ज्ञातयौवना के आन्तरिक मन्मथ संचार की प्रभा। मानो ऐसा भाता है कि मुग्धा का सच्चा सौंदर्य अब जाग पड़ा है। नायिका के बाहु मांसल बने, वक्ष नुकीली घनता धारण कर बैठें; काया को आकर्षक आकार मिला, हावभाव में हिलोर का लहराना लहलहाने लगा; नितंब, जघन पुष्ट हुए और कटाक्षों में तीखा हलाहल भर गया। उसकी वाणी में चतुराई लबालब भरी और कार्यव्यापारों में लालित्य की कलापूर्णता प्रस्फुटित हुई। अब वह समाज में संकोच का त्याग कर खुले रूप में बिना हिचकिचाहट से वार्तालाप कर सकती है; सखों के संग घुलमिल सकती है; लेकिन इतने में ज्यों ही पति महाशय पधारते हैं त्यों ही बावरापन, सकुचाई उसपर काबू कर बैठती है। अब रतिगृह की ओर जाते समय न उसे सखियों का साथ चाहिए, न प्रोत्साहन की आवश्यकता है, क्यों कि, उस में स्मरादिमत्व का उदय हुआ है; लेकिन हाँ वहाँ जाते समय उसके पग अब भी हौली गति को छोड़ने को तैयार नहीं है। उस में पूर्ण यौवन और रतिक्रीडाकौशल्य मुखरित हुआ है। वह अपने प्रिय के ईप्सित में उचित सहयोग और प्रोत्साहन भी दे सकती है।

प्रगल्भा :

रसमञ्जरीकार ने प्रगल्भा की परिभाषा की है कि :

पतिमात्रविषयकेलिकलापकोविदा प्रगल्भा।

इससे यह निष्कर्ष पाया जाता है कि अन्या एवं सामान्या नायिकाओं के वर्ग में प्रगल्भा की सम्भाव्यता नहीं है। यह अव्याप्ति अयोग्य है। साहित्यदर्पणकार (३·६०) की व्याख्या देखिए :

स्मरान्धा गाढतारुण्या समस्तरतिकोविदा।
भावोन्नता दरव्रीडा प्रगल्भाक्रान्तनायका ॥

प्रगल्भा में यौवन का संपूर्ण विकास होता है, वृत्ति उदात्त होती है और उस में लज्जा अल्प प्रमाण में होती है। स्मर के आवेश के कारण वह अन्धिनी होती है; रतिकौशल्य में वह प्रवीणा होती है तथा अनुभवों के कारण वह प्रगल्भा होती है।

शृङ्गारमञ्जरी ने प्रगल्भा मे दो उपभेदों की स्थापना की है: रीतिप्रीतिमति—'**पतिसङ्गमं या मुहुरभिलपति**' व रत्यानन्दपरवशा —**सङ्गमसंतुष्टा सत्यानन्दपरवशा।** यहाँ मदनविजितलज्जा प्रगल्भा का लक्षण बताया है। रसमञ्जरी में 'रतिप्रीतिरानन्दात्संमोहः' नामक प्रगल्भा का क्रीडा लक्षण कहा है।

यह वयावस्था ही ऐसी है। काया बड़ी स्थूल बनी है, मानो अबतक उपभोगा सुख एवं

अनुभव इसमें समाया हुआ हैं। शरीर अब न मुलायम रहा है तब भी वह मध्या की भाँति उत्फुल्लित और मुग्धा की भाँति रसीला दिखे इसके बारे में सहेतुक अविरत प्रयत्न जारी हैं। अब तो वस्त्रप्रावरण को ठीक तरह से पहना जा रहा है और शृङ्गार प्रसाधन पहले की अपेक्षा अधिक कलापूर्णता से सोच समझकर किया जा रहा है। मुग्धा की भाँति पेजाब या मध्या की भाँति साँकल को वह नहीं चढाना चाहती। मुग्धा का चापल्य या मध्या का लालित्य उसके पास भले न हो तथापि अङ्गप्रत्यङ्ग में तथा प्रत्येक हावभाव में मानो ऐसा अनुभवी लालित्य है, ऐसा आत्मविश्वास छलकता है कि चाहे उसे वह अपने पीछे खींचकर ले जा सकती है; ऐसा विश्वास दिखाया जाता है कि शृङ्गार का सारसर्वस्व इधर निवास करता है, यहीं उपलब्ध हो सकता है। इस कोविदा को रति रहस्य की सारी रीति केलियाँ भली भाँति मालूम हैं। किसे कब और किस तरह क्या देना चाहिए इसका ज्ञान अनुभवों के कारण उसे होने से तथा तार्किक अनुमानों की सहायता से प्रत्येक की पहुँच जानने की क्षमता होने से यों कहा जा सकता है कि प्रगल्भा कामशास्त्र के मंत्र तंत्रों के सशास्त्र एवं सप्रयोग अध्ययनाध्यापन की एक मूर्त प्रतिमा है। गाथा सप्तसई (क्र.२६) का कविवर कहता है :

खिण्णस्स उरे पइणो ठवेइ गिम्हावरण्हरमिअस्स।
ओलं गलन्तकुसुमं ण्हाणसुअन्धं चिउरभारम्॥

तीव्र ग्रीष्म की तापजर्जर मध्याह्न की बेला पर उसने अपने पति को रिझाया। वह श्रान्त बना तब अपने अधगिले मुलायम और सुगन्धित कुन्तल भार को उसके वक्षपर मुक्त किया।

इस प्रकार का उपचार कौशल्य प्रगल्भा के पास होता है। क्या नवीन संवेदना, क्या नवीन अध्ययन दोनों की अब उसे कोई आवश्यकता नहीं है तथापि अध्ययन तथा तंत्रों के पुनर्नवीकरण के प्रयोग नित चालू है। मानो यदि यह न करूँ तो, मै अन्यों की अपेक्षा पीछे रहूँगी, इस प्रकार की नयी अनजानी भावना से, या बारम्बार उन बातों को दुहराया नहीं हैं इस निर्मित सम्भ्रम की मिश्रित संवेदना से! यह उम्र ही ऐसी है। अब तो अपने दिन बीतने को हुए हैं यह संवेदना होने के कारण निष्ठा एवं लोक मर्यादाओं का पालन करनेवाले इस उम्र में देखते देखते उछलने लगते है।

धीरा, धीराधीरा, अधीरा :

इन नायिकाओं के रसमञ्जरी में प्राप्त होनेवाले लक्षण निम्नानुसार हैं।

व्यङ्ग्यकोपप्रकाशा धीरा। अव्यङ्ग्यकोपप्रकाशा अधीरा,
व्यङ्ग्याऽव्यङ्ग्यकोपप्रकाशा धीराधीरा।

अपने क्रोध को वक्रोक्ति की सहायता से व्यक्त करनेवाली है धीरा, स्पष्टतः सशब्दित करनेवाली अधीरा, कभी स्पष्टतः तो कभी वक्रोक्ति की सहायता से व्यञ्जित करनेवाली है धीराधीरा।

वस्तुतः ये संज्ञाएँ चरित्रभिन्नता की प्रदर्शिकाएँ है तथापि आलंकारिको ने यह गृहीत मान लिया है कि धीरा, धीराधीरा एवं अधीरा मानावस्थाएँ हैं, अर्थात् वे कृत्रिम हैं। भानुभट्ट की सम्मति मे इन अवस्थाओ का अभिभाव परकीया तथा सामान्या नायिकाओं में भी प्रकट होता है। आमोदकर्ता की राय में मनोवांछित प्रियकर प्राप्त कर लेना मूलतः कष्टसाध्य होने से तथा इस प्रकार का कोई मिलन गोपनीय रखना आवश्यक ही होने के कारण यहाँ क्रोध को स्थान नहीं है। अनुराग एवं क्रोध सहोदर होने के नाते तथा यह अवस्थाएँ एकान्त में, प्रथम मिलन की बेलापर नहीं, बाद के मिलन प्रसङ्गों पर प्रकट होना असम्भवनीय न होने के कारण, इस आक्षेप का चरितार्थ होना व्यर्थ की बात है। मध्या एवं प्रौढा नायिकाओं के मान लक्षण भानुभट्ट ने निवेदित किए हैं। वह इस प्रकार हैं :

	मध्या	प्रौढा
धीरा	व्यञ्जक शब्दों के द्वारा सूचित	रतौदास्य
धीराधीरा	परुष वाक्यों के द्वारा व्यक्त	रतौदास्य; तर्जन, ताडन
अधीरा	रुदन	तर्जन, ताडन

प्रौढा नायिकाओ में से धीराधीरा एवं अधीरा अपने प्रियकर को तर्जनाएँ देगी; तथापि ताड़ना के उस मार्ग का वे अवलम्ब करेंगी ऐसी सम्भाव्यता नहीं है। अर्थात् हरएक का अपना अपना अलग अनुभव होगा यही अन्तिम सत्य है।

अन्या :

रसमञ्जरीकार के अनुसार अन्या की परिभाषा है :

अप्रकटपुरुषाऽनुरागा परकीया।

विवाहित पति को छोडकर अन्य पुरुष पर गोपनीयता से अनुराग करनेवाली स्त्री अन्या है।

इस परिभाषा में अन्या के अन्तर्गत आनेवाले अनेक उपभेदों को समाविष्ट नहीं किया है। उदाहरणार्थ : कन्या नामक अन्या का एक उपभेद माना जाता है; वह अविवाहिता है। उसी भाँति कुलटा अन्या नायिका की प्रणय-गाथाएँ सर्वश्रुत होती है, अतः उस में गुप्तता किस बात की रखी है? फलतः इस परिभाषा को सम्भाव्य दोषों से मुक्त बनाने के लिए आमोदकारों द्वारा संशोधित रूप निम्नानुसार प्रस्तुत किया है :

अप्रकटपुरुषानुरागात्यन्तभावानधिकरणत्वं परकीयात्वं विविक्षितम।

जिस के मन में परपुरुष के प्रति अप्रकट प्रीति सदा निवसित होती है, वह परकीया-अन्या!

तथापि इसके बारे में आक्षेप उठाते हुए शृङ्गारमञ्जरी के कर्ता ने अन्या की बड़ी मार्मिक एवं सुबोध परिभाषा तय की है कि : जो परपुरुषानुरक्ता है वह परकीया।

आलंकारिकों ने अन्या नायिका का सूक्ष्म विश्लेषण प्रस्तुत किया है। उसके आधार पर तैयार किया हुआ कोष्टक प्रथम प्रदान किया जाता है, बाद में उसके उदाहरण और विवरण देखिए।

- अन्या
  - कन्या
    - उद्बुद्धा
      - गुप्ता
        - वृत्त सुरतगोपना
        - वर्तिष्यमान-सुरतगोपना
        - वृत्तवर्तिष्यमान सुरतगोपना
      - निपुणा
        - वाङ् निपुणा
        - क्रिया-निपुणा
        - पति वञ्चना निपुणा
  - परोढा
    - उद्बोधिता
      - लक्षिता
        - प्रच्छन्न लक्षिता
        - प्रकाश-लक्षिता
      - धीरा
      - धीराधीरा
      - अधीरा
    - कुलटा
    - मुदिता
    - अनुशयाना
      - विघटित संकेता
      - अप्राप्त-भावि-संकेता
      - शङ्कित संकेत-जारगमना
    - साहसिका

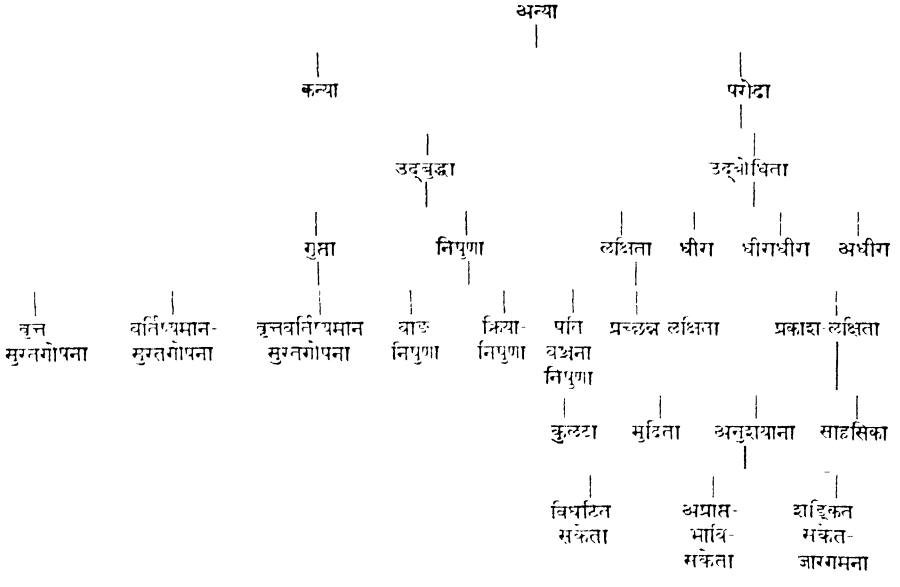

परपुरुष पर अनुराग रखनेवाली अन्या वा परकीया है। चूँकि अविवाहित कन्या मातापिता पर अवलम्बित होती है, वह अन्या। जिसे कन्या माना जाता है वह नियोजित वर की अपेक्षा किसी अन्य पुरुष पर अनुराग रखती है अथवा अन्य पुरुष उस से अनुराग रखता है। गाथा सत्तसई (क्र. ६४३) का कविवर कहता है :

मण्णे आअण्णन्ता आसण्णविवाहमङ्गलुग्गाइं।
तेहिँ जुअणेहिँ समं हसन्ति मं वेअसकुडङ्गा ॥

मेरे विवाह का दिन समीप आया है। सखियाँ विवाह मङ्गलगीत गाती सुनाती हैं। बाँस के वन के वे निकुञ्ज और जिनके साथ मैं ने वहाँ केलियाँ की वे युवक हँस रहे हैं।

भाग्यवशात् यदि अपेक्षित पुरुष के ही साथ विवाह होने पर वह **स्वीया** बनती है। जो विवाहिता परपुरुष पर अनुराग रखती है उसे **परोढा** कहते है। प्रिय के दर्शन से अथवा अपनी स्वेच्छा से जिसके मन में उसके प्रति अनुराग उत्पन्न होता है वह **उद्बुद्धा** है। प्रिय के द्वारा आयोजनापूर्वता से जिसकी प्रीति संपादित की गई वह है **उद्बोधिता**। स्वकार्य गोपनशीला **गुप्ता** होती है। **वृत्तसुरतगोपना** भूत-सुरत गोपन करती है। **निपुणा** तो परपुरुषों के प्रणय प्रकरणों मे अनुभवी एवं उसकी प्राप्ति तथा उसे छिपाने में प्रवीणा होती है, इसे स्वयंदूती भी कहा जाता है। वचनविदग्धा प्रवृत्ति **वाङ्मनिपुणा** की सर्वोपरि विशेषता होती है। वह अपने वाक्चातुर्य से सुरतेच्छा की अभिव्यञ्जना एवं संकेत निश्चित कर सकती है। गाथा सत्तसई का कवि (क्र. ८७३) कहता है :

पंथअ ण एत्थ संथरमत्थि मणं पत्थरत्थले गामे।
उण्णअ पओहरे पेक्खिऊण जइ वसइ ता वससु ॥

रे पथिक ! यह गाँव पथरिला है, तुझे इधर लेटने को बिछौना नहीं मिलेगा। इन उन्नत पयोधरों को देख। देखते-देखते वर्षा हो जायगी। हाँ, तुझे इधर ठहरना हो तो, भला, रह जा।

क्रियाविदग्धा इशारे से अपनी इच्छा व्यक्त करती है या संकेत तय करती है। इन्हीं नायिकाओं को अनुलक्षित कर कामशास्त्रकारों ने विदग्धकामुकों से सूचना की है कि : इन नायिकाओं के हावभाव प्रयोजनपूर्ण तथा सूचक होते है। देश-विदेश के नारीजीवनेतिहास मे क्रियाविदग्धा नायिकाओ के चातुर्य की अनेक कथाएँ पाई जाती है। उनके इशारों का स्पष्टीकरण नागरसर्वस्व (परिच्छेद ५ से १०) में पाया जाता है; जैसे :

संरागारक्तिरागेषु रक्तकाषायपिञ्जरैः।
सूत्रैरस्नेहके कृष्णैः पुष्पमाला प्रगुम्फिता ॥

अनुराग, विराग, अनुरञ्जन तथा अस्नेह व्यक्त करने के लिए माला गूँथते समय अनुक्रमशः लाल, काषाय, पीला तथा काला डोरा उपयोग में लाया जाए।

उपपति की उपस्थिति मे जो पति की वञ्चना करती है उसे **पतिवञ्चना** कहते है। गाथा सत्तसई (क्र. ३०१) का कवि कहता है :

अह अम्ह आअदो अज्ज कुलहराओ त्ति छेज्जइ जारं।
सहसागतस्स तुरिअं पइणो कण्ठं मिलावेइ ॥

यकायक पति घर लौटा यह देख कर यह अपना, अपने मायके का, आज ही आया है कहते हुए उसने दोनों की भेंट करवाई।

जिस के प्रणय प्रकरणों का पता केवल प्राणप्रिया सखियों को होता है, वह **लक्षिता**। जिस नायिका के विषयक सखियों की जानकारी केवल अनुमान मात्र होती है वह **प्रच्छन्नलक्षिता**। **प्रकाशलक्षिता** का व्यभिचार बड़ा प्रसिद्ध होता है। **मुदिता** इष्टप्राप्ति से सदा सन्तोषित एवं हर्षित होती है। संकेत भङ्ग की सम्भाव्यता के दुःख के कारण विकल बनी हुई **अनुशयाना** कहलाई जाती है। आलंकारिकों ने इस वर्ग के अनेक उपभेद सूचित किए है। रसमञ्जरी तथा शृङ्गारमञ्जरी के कर्ताओं ने इनमें से केवल तीन भेदों को मान्यता दी है। वर्तमान सङ्केत भङ्ग के कारण खिन्नमनस्का है,

विघटितसंकेता; भावि संकेत पूर्ति के लिए समुचित संकेत स्थल प्राप्ति के सन्देह के कारण खिन्न बनी हुई **अप्राप्तभाविसंकेत**; संकेत स्थानपर प्रिय आयेगा अथवा नहीं इस सन्देह से खिन्न बनी हुई **शङ्कितसंकेतजारगमना**।

गाथा सत्तसई (क्र: ८४८) का कवि कहता है:

दूई ण एइ, चंदो वि उग्गओ, जामिणी वि बोलेइ।
सव्वं सव्वतो च्चिअ, विसंठुलं कस्स किं भणिमो॥

चाँद ऊपर आया, रात ढलने लगी है; इर्दगिर्द का सारा वातावरण चञ्चल बना है! दूती का कहीं ठिकाना नहीं है। मैं अपनी विकलता किससे और कैसे कहूँ?

प्रिय से मिलने के लिए साहस करनेवाली साहसिका कहलायी जाती है।

गाथा सत्तसई (क्र: २३१) का कवि कहता है:

तस्स अ सोहग्गगुणं अमहिलसरिसं च साहसं मज्झ।
जाणइ गोलाऊरो वासारत्तोद्धरत्तो अ॥

नारियों में अभाव से पाया जानेवाला मेरा साहस और उसके भाग्य की चमकती रेखा, केवल वर्षा की आधी रात और गोदावरी नदी की बाढ़ जानती है।

साहित्यशास्त्रकारों की अपेक्षा कामशास्त्रकारों ने परकीया नायिकाओं का विश्लेषण अधिक विस्तार के साथ प्रस्तुत किया है। जो इस प्रकार है:

अन्या नायिका

असाध्या — साध्या

साध्या → सुखसाध्या, कष्टसाध्या

सुखसाध्या → अभियोगसाध्या, दूतीसाध्या

कामशास्त्रकारों का नर-नारी विषयक दृष्टिकोण आधुनिक सुसंस्कृतों को अस्वीकार्य जँचेगा, साथ ही अभिरुचि विहीन भाएगा। रतिरहस्य (१३:१५) में बतलाया है कि सौन्दर्य के कारण स्त्रीपुरुषों का एक दूसरे के प्रति आकर्षण होता है। रतिक्रीडा से पहले पुरुष धर्माधर्मविवेक का विचार रखता है, जिसका सम्पूर्ण अभाव स्त्री में होता है। आलोचक कात्स्यायन तो पराकोटि की बात कहता है: पुरुष सुन्दर होने से मतलब है, भले वह पिता, बन्धु या पुत्र हो, स्त्री को उसके प्रति आसक्ति हो जाती है! इस प्रस्तावना के उपरान्त ये शास्त्रकार पारदारिकाधिकार की बात कहते हैं। अर्थात् उनके मत के अनुसार सम्पूर्णतया असाध्या कोई भी नहीं होती। रतिरहस्य (१३.६–८) और पञ्चसायक (४.२४) में त्याज्य स्त्रियों का ब्यौरा दिया है। जिस में राजा, गुरु, ब्राह्मण, पडोसी एवं मित्र इनकी अङ्गनाएँ; उसी तरह उन्मत्ता, दुर्गन्धा, रुग्णाएँ एवं वृद्धप्राया आदियों को अन्तर्हित किया है। कन्या का वशीकरण स्वयं करे, दूती की सहायता से न हो, इस प्रकार का इशारा दिया गया है। जो गुरुजन, धर्म तथा चुगलबाजों का लोहा मानती है वह सिद्धान्ततः यद्यपि असाध्य लगे तब भी निपुणा दूती की सहायता से बारम्बार प्रयत्न करने पर साध्या होती है, इस प्रकार की मन की बात भी उन्होंने कह दी है।

स्त्रियों की कामुकता के बारे में कामशास्त्रकारों की धारणाएं प्रत्यक्ष लौकिक व्यवहार में अवलोकित नहीं होती हैं, वैसे ही उसकी सत्यता को प्रमाणित भी नहीं किया जा सकता। इतना ही नहीं तो संस्कृत नाट्य एवं काव्य क्षेत्र में भी अन्यथा अन्यार्थक पुरुष अवलोकन में भी नहीं आते। संस्कृत तथा प्राकृत गीतिकाव्यों में जार और जारिणियों का बारम्बार दर्शन होता है। गाथा सत्तसई (क्र ८८१) की नायिका कहती है:

णिअपुरिसे वि रमिज्जइ परपुरिसविवज्जिए गामे।

अगर परपुरुष नहीं मिला तो पति के संग रममाण होने में कोई बाधा नहीं है।

भला रममाण भी कैसे हो? (क्र. ८८२) देखिए।

णिअपुरुसेहि वि अम्हे परपुरिसो त्ति च्चि अ रमाओ॥

रति केलिप्रसङ्गपर पति को ही परपुरुष मान कर।

क्या आधुनिक विश्लेषणकारों की प्रगति इसकी अपेक्षा अधिक मानी जाए?

सा मा न्या

रसमञ्जरी में सामान्य वनिता की निम्नानुसारित परिभाषा पाई जाती है :

वित्तमात्रोपाधिकसकलपुरुषाऽनुरागा सामान्यवनिता ।

वित्त मात्र की प्राप्ति के प्रयोजन से जो अनुराग के लिए सुसज्ज होती है उसे सामान्या वनिता कहिए।

शृङ्गारमञ्जरी इस परिभाषा की बड़ी कड़ी आलोचना करती है। वनिता के आवाहन का प्रयोजन यदि वित्त प्राप्ति होगा तो वह नायिका संज्ञा के अन्तर्गत स्थान पा ही नहीं सकती है; कारण ऐसी स्थिति में अनुराग की सम्भाव्यता नहीं है। वित्त को परिमाण नहीं माना जा सकता है क्यों कि परकीया भी प्रियकर के पास से समय समय पर द्रव्य का स्वीकार करती है; तो भी उसकी अभिसार प्रवृत्ति अनुरागमूलक होती है। बहुपुरुषसम्भोग सामान्य वनिता का व्यवसाय होता है। केवल अनेक पुरुषों के साथ सम्बन्ध रखनेवाली सामान्या है, सो भी न कहे, क्यों कि परकीया कोटि की नायिकाओं में से कुलटा भी यही करती है; मानो मनभावक प्रिय की प्राप्ति होते दम तक वह पुरुषपरीक्षा करती है। यों भी न कहे कि किसी के भी साथ सम्भोग करते समय जो अनुराग से प्लावित होती है अथवा ऐसा आभास निर्माण करती है, वह सामान्या है। इन आक्षेपों का विचार करते हुए शृङ्गारमञ्जरी निम्नानुसार परिभाषा प्रस्तुत करती है :

अपरिणीतफलनिमित्तकानेकपुरुषसंभोगा सामान्या ।

जो अविवाहिता है, सम्भोगार्थ सम्प्रदान की आकांक्षा करती है तथा अनेक पुरुषों के साथ सम्बन्ध रखती है, वह सामान्या।

शृङ्गारप्रकाश में सामान्या का वर्गीकरण निम्नानुसार किया है :

सामान्या

अनूढा	ऊढा	स्वयंवरा	स्वैरिणी	वेश्या

रूपजीवा	विलासिनी	गणिका

स्वयंवर के समय सीता और द्रौपदी ने वीर्यशुल्का को मांगा इसलिए भोजप्रणीत के अनुसार उन्हें सामान्याओं की श्रेणी में रखा जाता है। रूपजीवा संज्ञा से तात्पर्य रहा है, कि सम्भव तथा असम्भव रूप की सहायता से शरीर विक्रय करनेवाली अधम वेश्या। गणिका नृत्यगायनादि गुणों से सम्पन्न मानी जाती है।

शृङ्गारमञ्जरी में सामान्या का वर्गीकरण निम्नानुसार दिया है :

सामान्या

स्वतंत्रा	जनन्यधीना	नियमिता	कलानुरागा	कल्पितानुरागा

स्वतंत्रा स्वच्छन्दविहारिणी होती है। जनन्यधीना माता की आज्ञा के अधीन होती है। गाथा सत्तसई का एक उदाहरण (क्र. २१) देखिए :

असमत्तमण्डणाविअ वच्च घरं से सकोउहल्लस्स
वोलाविअहलहलअस्स पुत्ति चित्ते ण लग्गिहिसि ॥

लडकी, भले साज शृङ्गार अधूरा रहे, तब भी जिसने तुझे आमंत्रित किया है वह उत्सुक है, तबतक जैसे तैसे उसके घर चली जा; समय का खयाल रख, हाजिर सो वजीर होता है। प्रसाधन में अगर ज्यादह समय गँवाएगी, तो उसकी आसक्ति मन्द पड़ेगी और इसीलिए बाद में भले कितनी भी सजावट क्यों न कर, उसको रिझा न सकेगी।

नियमित पुरुषों के साथ सम्बन्ध रखनेवाली नियमिता कहलायी जाती है। स्वच्छानुरागा केवल एक ही पुरुष के साथ सम्बन्ध रखती है; वात्स्यायन (४·१·५४) ने इस के लिए एकाचारिणी संज्ञा को प्रयुक्त किया है। इसका चरित्र स्वीया की भाँति (कामसूत्र : ६·२·१) होता है इसलिए इस वर्ग में धीरा–धीराधीरादि उपभेदों को स्थान है। कल्पितानुरागा वित्तसम्प्रादानार्थ अनुराग का अभिनय करती है।

वेश्या एवं वेश्यागमन इनके बारे में आधुनिक सुशिक्षितों में पाई जानेवाली घृणा का प्राचीन अथवा मध्ययुगीन सुसंस्कृत सभ्यों मे अभाव है। वस्तुतः वेश्या-वर्ग की निर्मिति तथा समाज के द्वारा उसका स्वीकार वहीं पाया जाता है जहाँ कड़ी धार्मिक पाबन्दियों के कारण सम्मिश्रित समाजजीवन असम्भव है; जहाँ नारियों को नृत्यगायनादि कलाएँ तथा रतिकौशल की शिक्षा नहीं दी जाती अथवा पाना मुश्किल होता है और इसलिए पुरुषों की आसक्तियों या अभिरुचियों का समाधान होने का और कोई चारा नहीं रहता। वात्सायन ने अपने कामसूत्र मे इस विषय का निर्वाह एक सम्पूर्ण अधिकरण मे किया है। वेश्या कैसी हो? वात्स्यायन (६·१·१२-१३) की सम्मति है : वह सुन्दरी व तरुणी, सुलक्षणा व सौष्ठवपूर्णा एवं मधुभाषिणी हो, उसके मन में सम्पत्ति का मोह न हो, नायक के रूपगुणों के प्रति उसका मन अनुरागित हो। नायक को सुखी करने के प्रति वह दत्तचित्त हो। उसकी मति अचञ्चल हो, वृत्ति में विवेक हो, वह कलासम्पन्न हो; वैसे ही बैठकों में स्वयं तन्मय होने एवं अन्यों को तन्मय कराने की कुशलता व जिज्ञासा उसके पास हो। ऐसी अनोखी वस्तु को पाने का मौका कौन गँवाएगा? मुक्तात्मा अथवा भैसा; या जैसे गाथा का सृजनकार कहता है, पराशर सूत्रों का विवेचक। आजकाल के ज़माने में ऐसी वेश्याएं पाई नहीं जाती है और जो दिखाई देती है, वे वस्तुतः ग्राहक का दर्शन होते ही अँगडाई का बहाना कर करवट लेना शुरू करती है, इस प्रकार की राय इस क्षेत्र के दर्दी पेश करते है। ध्यान रहे, कि वात्स्यायन द्वारा विवेचित वेश्या रूपजीवा वेश्या है, न कि गुणमण्डिता गणिका। वात्स्यायन-काल मे संसर्गजन्य बीमारियों का फैलाव न होने के कारण वेश्याओं के प्रति समाज की सहानुभूति तथा सहिष्णुता होगी ऐसा कहा जा सकता है। नायिकाओं के वर्गीकरण के अनुसार यद्यपि वसन्तसेना सामान्या श्रेणी की है तथापि वस्तुतः उसे असामान्या ही कहना होगा। चारुदत्त की विपन्न स्थिति के कारण उसने अपने मन के अभिराम अनुराग की अवहेलना नहीं की। इस प्रकार की नायिकाएँ तो साहित्य क्षेत्र में दुर्लभ हुई है, तब वास्तविक जीवन की बात तो अलग रही! इस प्रकार की नायिकाएं केवल चारुदत्त की भाँति उदार पुरुषों के जीवन में प्रवेश करती हैं; सत्य ही है कि यह विधिलिखित होता है।

५ : अष्ट-नायिकाएँ

अबतक बतलाए हुए नायिका भेद का प्रमुख आधार चारित्रिक एवं व्यक्तिनिष्ठ है; उनका मूलाधार चरित्र का स्वभाव विशेष रहा है। व्यक्तित्व एवं वय के अनुसार व्यक्त होनेवाले कामविकारों पर कुछ भेद मूलगामी रूप से स्थापित किए हैं तथा कुछ उसी आधार से उत्क्रान्तित होनेवाले हैं। क्या कामशास्त्र, क्या साहित्यशास्त्र दोनों के लिए ये भेद समान हैं। नायिका का साध्यसाधित्व निश्चित करने के उद्देश्य को लेकर कामशास्त्रकारों को उसका महत्त्व है; तो व्यक्तित्व का विश्लेषण तथा उससे निष्पन्न होनेवाले रस के प्रयोजन का आदर करते हुए साहित्यकारों को!

काम, नाट्य व साहित्य शास्त्रकारों द्वारा प्रस्तुत अष्टनायिकाओं का वर्गीकरण उनकी अवस्थाओं पर अधिष्ठापित हैं। नायक एवं नायिका के पारस्परिक अनुराग के साथ यह वर्गीकरण सम्बन्धित है। अतः सम्भव है कि केवल एक ही नायिका इन सर्व अवस्थाओं का पात्र बन सकेगी।

संस्कृत साहित्य की अष्टनायिकाओं का विख्यात संकेत भरत मुनि द्वारा नाट्यशास्त्र मे (२२ : २०३–२०४) निम्नानुसार प्रस्तुत हुआ है :

तत्र वासकसज्जा वा विरहोत्कण्ठितापि वा।
स्वाधीनपतिका वापि कलहान्तरितापि वा॥
खण्डिता विप्रलब्धा वा तथा प्रोषितभर्तृका।
तथाभिसारिका चैव इत्यष्टौ नायिकाः स्मृताः॥

जिस नायिका का पति सदा उस के वशीभूत रहे वह स्वाधीनपतिका, स्वाधीन भर्तृका। प्रवासी देशान्तरवासी प्रियकरवाली प्रोषिता, प्रोषितपतिका, प्रोषितभर्तृका। प्रिय के स्वागत के लिए साज शृंगार सामग्री सह तत्पर वासवसज्जा, वासकज्जिका। प्रियकर के विरह–वियोग से व्यथित, उत्का, विरहोत्कण्ठिता। प्रिय के प्रणयद्रोह से क्षुब्धित खण्डिता। प्रिय से कलह करने के उपरान्त पश्चात्तापदग्ध कलहान्तरिता। संयोग-संकेत स्थानपर प्रिय से मिलने के लिए स्वयं गमन करनेवाली अभिसारिका। संकेतस्थान पर प्रिय के न आने से व्यथिता है विप्रलब्धा।

आज जो स्वाधीनपतिका होने के नाते संतोष और गर्व का अनुभव करती होगी वही पति के प्रवास गमन पर प्रोषितपतिका बनेगी। आज वह आयेगा; अतः स्वागत की तैयारी मे सम्पन्न होगी, और वासकसज्जा कहलाएगी। पति के अन्य प्रणय अभिसार के भेद का ज्ञान होनेपर वह खण्डिता होगी- आदि सभी अवस्थाएँ किसी एक ही नायिका मे अन्यान्य परिस्थितियों एवं संयोगोवशात् निर्माण होने की सम्भाव्यता है।

वक्रोक्तिगर्विता नामक एक नई और नौवीं महानायिका की अभिव्यञ्जना शृङ्गारमञ्जरी करती है।

पूर्वोक्त नायिका-भेद के स्वीया, मुग्धा, मध्या, प्रगल्भा, परकीया और सामान्या नामक उपभेद स्वाधीनपतिका, प्रोषितपतिका, वासकसज्जा और अभिसारिका इन महानायिकाओं को भी लागू होते हैं। विरहोत्कण्ठिता, खण्डिता, कलहान्तरिता, विप्रलब्धा और वक्रोक्तिगर्विता महानायिकाओं में मुग्धा को प्रश्रय नहीं दिया है।

आलंकारिकों एवं साहित्यशास्त्रकारों ने इन महानायिकाओं का विभिन्न दृष्टियों से वर्गीकरण किया है।

स्वाधीनपतिका :

अष्टनायिकाओं में स्वाधीनपतिका प्रकृति से सरल और चरित्र से विमल होने से तथा अपने स्वाधीनपतिकत्व के कारण वैवाहिक जीवन का सारसर्वस्व उस के स्वाधीन होने से इस नायिका को विवेचन के लिए अग्रिम स्थान दिया जा रहा है।

रसमञ्जरी में इस नायिका का प्राप्त लक्षण निम्नानुसार है :

सदासाऽऽकूताज्ञाकरप्रियतमा स्वाधीनपतिका। अस्याश्चेष्टा।
वनविहारादिमदनमहोत्सवमहाऽहङ्कारमनोरथाऽऽवाप्ति प्रभृतयः॥

जिसकी आज्ञाएँ एवं इच्छाएँ पति सदा निर्वाह करता है, वह स्वाधीनभर्तृका! इस परिभाषा के 'सदा' इस शब्द के प्रयोजन के प्रति शृङ्गारमञ्जरी आक्षेप उठाती है: चूँकि अष्टनायिकाओं का वर्गीकरण अवस्थाओं के सिद्धान्त को लेकर किया गया है और जब कि अवस्थाएँ चिरस्थायी नहीं है, अतः यह शब्दप्रयोग अप्रस्तुत माना जाय। शृङ्गारमञ्जरी ने इसीलिये: जो अनुकूल प्रिया है वही स्वाधीनपतिका, इस परिभाषा का सुझाव प्रस्तुत किया है।

आलंकारिकों ने मुग्धामध्यादि तथा धीराधीरादि वर्गीकरण स्वाधीनपतिका को लागू किये हैं। उनमें से मुग्धा के विषय में यह आक्षेप उठाया जा सकता है कि यद्यपि पति उसके अधीन है, तो भी पति के प्रति उसका मन पर्याप्त अनुभूति एवं संतुलना से प्रगल्भित तथा परिपुष्ट बना हुआ नहीं रहता। पति की अनुकूलता के कारण धीराधीरादि लक्षण स्वाधीनपतिका में विद्यमान होना असम्भव है, इस प्रकार का विरोध शृङ्गारमञ्जरी ने उठाया है। कारण यह है कि उन लक्षणों के होने से वह खण्डिता वर्ग में अन्तर्हित की जायगी।

शृङ्गारतिलक ने इस नायिका की परिभाषा रतिप्रवृत्तिविशेष के अनुरोध से की है।

यस्या रतिगुणाकृष्टः पतिः पार्श्व न मुञ्चति
विचित्रविभ्रमासक्ता स्वाधीनपतिका यथा।

भले ही नायक नायिका के अधीन हो, तो भी आसक्ति के होने से उसके सदैव पास रहने की गुंजाइश प्रतीत नहीं होती—कम से कम कविता को छोड़कर व्यवहारिक जगत् में! इसके अलावा स्वाधीनपतिका ने पति पर पाया प्रभुत्व केवल रतिवृत्ति की अधिकता कहने से उसके अन्य गुणों की अवहेलना होती है और तिसपर अन्याय भी होता है; न कि केवल नायिकापर अपितु नायकपर भी।

शृङ्गारमञ्जरी में स्वाधीनपतिका के आठ भेद बतलाए गए हैं: स्वीया, मुग्धा, मध्या, प्रगल्भा, परकीया तथा सामान्या एवं दूतिवञ्चिका तथा भाविशङ्किता। अन्तिम दो भेद कर्ता की मौलिक कल्पना की सर्जना है। नायक दूतिवञ्चिका के अधीन होता है; नायिका उस से चुपके से समझौता करती है तथापि कृत्रिम ऐंठ का बहाना धारण करती है और दूती का परिहास करती हुई उसे फँसाती है। नायक के संग प्रणय अभिसार करते समय जो भविष्यत् के बारे में भीतिग्रस्त होती है, वह है भाविशङ्किता! दूतिवञ्चिका—एक क्रीडा प्रकार है, वह कदापि वर्ग विशेष बन नहीं सकती! स्वाधीनपतिका को, भविष्यत् के प्रति दुःख का संदेह क्यों? क्या पति का शङ्कित करनेवाला कुछ आचरण उसने देखा है? या स्वयं के यौवन के ढलने के बारे में अस्पष्ट संवेदना उसे हुई? या यह अन्या अथवा सामान्या है?

स्वाधीनपतिका के भाग्य के बारे में क्या कहे ? गाथा सप्तसई (क्र : ८६) में कविवर कहता है :

एक्क पहरुव्विण्णं हत्थं मुहमारुएण वीअन्तो।
सो वि हसन्तीएँ मए गहिओ वीएण कण्ठम्मि॥

नायिका ने लाड में आ कर प्रियकर को चम्पत मारी, तो उसकी नाजुक हथैनी को कितने कष्ट हुए, तुरन्त उस करकमल पर वह हवा फूँकने लगा; तब हँसते हँसते उसने अपना दूसरा हाथ उसके गले में बाँध दिया।

स्वाधीनभर्तृका के चरित्र में आत्मविश्वास एवं अहं होता है। प्रियकर है ही मेरी मुट्ठिया मे, मन चाहे तब मै अपनी उँगलियों पर उन्हें नचा सकती हूँ! व्यर्थ मे नही है सब- मेरे पास जो इतने गुण हैं! यह सब माना, तथापि, क्या उन्हें इस बात का ज्ञान है? अन्य स्त्रियों में अभाव से प्राप्त होनेवाले गुण मुझ में हैं, यह तो मैं भली भान्ति जानती हूँ—परन्तु बिना तुलना के वह कैसे जानेगा? गाथा सप्तसई की एक नायिका (क्र : ४७) प्रार्थना करती है :

अण्णमहिलापसङ्गं दे देव करेसु अम्ह दइअस्स।
पुरिसा एक्कन्तरसा ण हु दोसगुणे विआणन्ति॥

प्रभो! मेरे पति का संयोग अन्य स्त्रियो से होने दो-मुझे कोई रंज नही होगा—न मुझे दाह होगा! अन्य स्त्रियों मे उनका सम्बन्ध होने पर उन्हें अन्यो के पास अविद्यामान होनेवाले गुण मेरे पास होने का ज्ञान होगा और उनका प्रेम दुगुना बढ़ेगा। इस में धोखा तो निश्चत है मै इसे जानती भी हूँ, लेकिन संकट को मोल लेने को तैयार हूँ। कारण यह कि मेरे पति अधम चरित्र के नही है इस पर मेरी श्रद्धा है; तथा अपने पास निवसित अन्य असाधारण गुणों के बारे में भी मुझे आत्मविश्वास है। वस्तुतः यह अहंकार है और इसे मै जानती हूँ। पति के हृदय में मेरा अधिष्ठान है। इसका मैने अनुभव किया है, इसीलिए तो इसकी प्रतीति मेरे मन मे हुई। पति मुझ मे एकनिष्ठ है। कोई भी सामान्य स्त्री इसीमे संतोष मानकर अपने घरबार को सम्हालती-बनाती जायगी। यदि यह एकनिष्ठता अज्ञानता और अनुभवों पर आधारित होगी तो उस अल्प संगतुल्य मे मुझे सन्तोष, सुख नही है। मुझ में होनेवाले गुणों की सहेतुक संवेदना उन्हें हो, यही एक मात्र मानस है। यदि इस अग्नि परीक्षा मे सफल नहीं बनी तो उसके परिणाम को भुगतने के लिए मै तयार हूँ।

भोली बेचारी! इस प्रकार का आत्मविश्वास या तीव्र अहंकार कभी कभी जीवन को तीखा पाठ सिखाता है। जीवन को मिटियामेट बनाने का यह रास्ता है। पुरुष अन्य स्त्रियो के पास जाता है तो केवल उनके गुणवैशिष्ट्यो के कारण! इसका मतलब यह नहीं कि वे गुण स्वीया मे अनुपस्थित है और वह उनकी प्रतीति कहीं अन्यत्र ढूँढकर अनुभूत करना चाहता है; अथवा वह गुणो की परख करना जानता है। इस प्रकार की भूमिका अवैज्ञानिक है। वैसे ही अन्या मे अनन्य साधारण गुण है इसलिए वह अन्यत्र व्यभिचार मे रमना त्यागेगा इस प्रकार का निष्कर्ष निकालना भी अभिप्रेत नहीं है। लेकिन यह सब होते हुए भी जीवन के इस महान् सिद्धान्त को हम क्यों भूल जाते है, कि बिना अहंकार व तज्जन्य गुण-दोषो के, जीवन में सरसता निर्माण होना असम्भव है!

यह देखिए, स्वाधीन पतिका। पति तो उसके अधीन है। उसकी आज्ञा, वाचा वा इच्छा मे परिणत होने का ही विलम्ब है मानो उसकी पूर्ति के लिए वह सदा तत्पर है। इसी आत्मसन्तोष मे उसका मुखचंद्र प्रफुल्लित है। मानो, मन से उफनानेवाला प्रमोद ही अभिव्यक्त करने के लिए उसने विचित्रोज्ज्वलवस्त्र परिधानित किए है। मदन महोत्सव के मेले मे रमने की उसकी कामना है। वसन्तागम के समय पति के साथ उसने इस उत्सव को समारोहित किया है। साम्प्रत समय शारदोत्सव के बहार के दिन है। उसे वनविहार से रुचि है; और इसीलिए तो वह वन में ईप्सित की तुष्टि करने आई है। गर्द, सुशीतल और घनी तथा मुलायम हरियाली चारों ओर के प्रदेश में लेटी है। इर्दगिर्द की लता वल्लरिया रंगी-सतरंगी फूलो से उत्फुल्लित है। वायु के प्रत्येक झोके से मत्तगन्ध वन-प्रदेश के वातावरण को मतवाला बनाता है। बयार के हर हिलोर से उनके दस्ते मानो हरियाली को गुदगुदी करने के लिए झोपते है।

और तन के प्रत्यक्ष स्पर्श से मानो सीत्कारती-सी यह अपने बदन को थिरकाती, मचलाती है। सिहरन दौड़ आती है। हरियाली पर लेटी हुई नायिका की विभ्रमता के कारण नायक तन्द्रा-मग्न हुआ है; किञ्चित् लुब्ध भी हुआ है। सोचते सोचते, सम्भ्रान्त हुआ है कि आवाहन करने से पहले आक्रमण के लिए मैं कौन अवलम्ब अपनाऊँ—? नायक के गले में गलबाहियाँ डालकर नायिका केवल भृकुटि संकोच एवं ओठों की अशब्दित उन्मीलन से पूछती है—अजी, ऐसी आँखें गड़ाकर भला, क्या देखते हैं? जाने, मैं आज ही जो मिली हूँ! और मानो वह उसे बतलानेवाला है, हाँ—तुम तो अद्वितीय सुन्दरी हो और तुम्हारा विभ्रम भी अभिनव है! तुम नवनवोन्मेषशालिनी हो, इसीलिए तुम मेरी प्रिया हो; और इसीलिए मैं तुम्हारे अधीन हूँ!

गाथा सत्तसई (क्र. ४६८) का कवि कहता है :

मुहपेच्छओ पई से सा वि हु सविसेसदंसणुम्मइआ
दोवि कअत्था पुहई अमहिलपुरिसं व मण्णन्ति ॥

उसका मुख देख कर पति प्रसन्न हुआ और उसके दर्शन से पत्नी उन्मत्ता बनी! मानो इस धरापर कोई अन्य स्त्री नहीं है तथा न कोई अन्य पुरुष है; दोनों इस भावना से कृतार्थ बने!

वासकसज्जिका :

भरत के नाट्यशास्त्र ने वासकसज्जिका की परिभाषा (२३:२०६) इस प्रकार दी है :

उचिते वासके या तु रतिसम्भोगलालसा
मङ्गलं कुरुते हृष्टा सा वै वासकसज्जिका ॥

प्रतापरुद्रीय की व्याख्या (१·४४) भी लगभग ऐसी ही है :

प्रियागमनवेलायां मण्डयन्ती मुहुर्मुहुः
केलीगृहं तदात्मानं सा स्याद्वासकसज्जिका ॥

इस व्याख्या को शृङ्गारमञ्जरी ने भी अपनाया और इसके साथ ही दूसरी व्याख्या भी दी है, जो इस प्रकार है :

नायकापेक्षका सन्तोषकृतप्रयत्ना वासकसज्जिका।

प्रिया ने आज अभी आने का वादा (वास=वार, दिवस) या संकेत किया है; उसी के स्वागत के लिये नायिका ने रतिगृह (वास=अन्तःपुर) सुसज्जित रखा है, सुगंधित (वास=सुगंध) भी किया है और वह स्वयं वेशभूषा और अलंकार धारण कर नायक की बाट जोह रही है।

शृङ्गारमञ्जरी के द्वारा अवसितप्रवासपतिका नामक वासकसज्जिका के एक उपभेद की कल्पना हुई है। जिसके पति की प्रवासावधि समाप्त हुई है, वह अवसितप्रवासपतिका। इस मत के समर्थनार्थ कहा जा सकता है कि प्रवासी पति के वियोग एवं चिन्ता के कारण मन में समाई हुई विकलता प्रोषितपतिका का प्रमुख लक्षण होता है; पति प्रवास से लौट आने को होने के कारण मन में उत्कण्ठित होनेवाला आनन्द अवसितप्रवासपतिका का लक्षण है; अतः वह वासकसज्जिका वर्ग का उपभेद नहीं बन सकती। इसके अनन्तर पति के पुनरागमन पर उसकी अनुपस्थिति में सही हुई विपदा की व्यथा-कथा पत्नी उसे अवश्य कहेगी; वस्तुतः वैसा होना अनिवार्य है। अतः अवसितप्रवासपतिका वासकसज्जिका का उपभेद नहीं हो सकती, इस प्रकार का कथन खण्डन के पक्ष में प्रस्तुत किया जा सकता है। वैसे ही पूर्वनिश्चित संकेत स्थानपर प्रियकर को लानेवाली अभिसारिका वासगृह सजा कर तथा वस्त्रालङ्कार धारण कर स्वागत के लिए आभूषित हो जाएँ तब भी उसे वासकसज्जिका नहीं कहा जा सकता है। स्वीया, मुग्धा, मध्या, प्रगल्भा परकीया एवं सामान्या, वासकसज्जिका इस नायिका के सर्वमान्य सामान्य उपभेद है।

कविवर जयदेव गीत गोविन्द के षष्ठम सर्ग में वासकसज्जिका का वर्णन करते हुए लिखता है: राधा अतीव औत्सुक्य प्रिय की प्रतीक्षा करती है : रे नाथ, हरे जय नाथ हरे, लतागृह में राधा तेरी प्रतीक्षा करती है। तेरे आने की आहट पाकर वह दसदिशाओं को सूक्ष्मता से परखती है। पास ही में श्याम

खड़ा है इस भूल में पड़कर वह कृष्णतमस् मेघों से घने बने गहरे अन्धःकार का ही दृढ़ आलिङ्गन करती है। उसकी मृदु काया रोमाञ्चों के कारण शूलमय बनी है। केवल तेरे लिए उसने अलंकार धारे हैं, तेरे लिए उसके सारे संकल्प हैं।

यह देखिए वासकसज्जा। प्रियतम के लिए उसने शृङ्गार मंदिर सजाया है, शय्या को सुसज्जित, सुशोभित एवं पुष्पमालाओं से सुगंधित किया है। नायिका मध्या है। उसने प्रसंगोचित वेशभूषा भी की है, मण्डन रूप में फूलों की माला और फूल भी पहेनी हैं। ऐसे प्रसंगो पर अलंकारों से बाधा होती है, इसलिए इसने मोतियों की माला ही बस पहन रखी है। मानो क्रीडा में ताल आ जाय, इसीलिए घुँगरू पहने हैं। अभी नहाई लगती है। केशकलाप अभी भी जरा गीला है। क्या इसीलिये वह अभी तक पाशबद्ध नहीं हुआ ? या शायद यह कोई नयी केशभूषा है ? थकेमाँदे आये हुए के सीने से अगर गीले बालों को स्पर्श हो जाय तो उसका तपा हुआ शरीर और व्याकुल अंतःकरण खुश हो जायगा। मानो उस सुखद स्पर्श के लिये सुगन्ध का साथ चाहिये इसीलिये इसने बालों में फूल गूँथे हैं। आने वाले सुख की कल्पना से ही इसका शरीर रोमांचित हुआ सा लगता है। मानो, इसीलिए वह उस पुलकपर से ही मुलायम अदा से अपना हाथ फेरती है।

प्रो षि त भ र्तृ का :

रसमञ्जरी ने प्रोषितभर्तृका की निम्नानुसार व्याख्या की है :

देशान्तरगते प्रेयसि सन्तापव्याकुला प्रोषितभर्तृका ।

प्रियकर के परदेस जानेपर व्याकुला, प्रोषितभर्तृका कहलायी जाती है ।

जिसका पति भविष्य में प्रवास के लिये जानेवाला है या अब प्रवासपर निकल रहा है, केवल ऐसी नायिकाओं का ही समावेश प्रोषितपतिका इस वर्ग में होता है। लेकिन उस व्याख्या में उपरोक्त परिभाषित नायिका को कोई स्थान नहीं है, इसलिये शृङ्गारमञ्जरी ने इस नायिका की व्याख्या इस तरह की है :

पतिप्रवासखिन्ना प्रोषितभर्तृका ।

पति के प्रवास के कारण खिन्नमनस्का, प्रोषितभर्तृका है ।

प्रोषित संज्ञा मे भूत, भविष्य, और वर्तमान इन तीनो कालो का समावेश होता है। अतः इस वर्ग के तीन उपभेद होते हैं : प्रवत्स्यत्पतिका: प्रियप्रवासप्रयत्नोद्यमं ज्ञात्वा वेदनावती=पति प्रवास पर जानेवाला है, इसी से जो व्याकुल हुई है; प्रवत्स्यत्पतिका : वर्तमान प्रवासपतिका = जिसका पति अभी प्रवासपर जा रहा है; प्रोषितपतिका = जिसका पति (भूतकाल में) प्रवास पर चला गया है। शृङ्गारमञ्जरी में प्रोषितपतिका के और दो भेद दिये है। विगलित-प्रस्थानपतिका : (यस्या वेदना-मालोक्य प्रिय : प्रस्थानान्निवर्तते सा) = नायक की प्रवास की तैयारी देखकर भावी विरह की कल्पना से ही व्याकुल हुई नायिका को देखकर नायक ने प्रवास पर जाने का विचार रद्द किया है, वह नायिका। सख्यनुतापिता = नायकपरदेशगमनान्तरं स्वसमाधानकर्त्री सख्यपि चेत्क्वचित् प्रयाणं करोति सा = नायक के परदेश मे जाने से व्याकुल हुई नायिका को शान्ति देनेवाली प्यारी सखी भी प्रवास पर जाने से आर्त और व्याकुल नायिका।

प्रोषितपतिका की स्थिति स्वीया, मुग्धा मध्या आदि सर्व प्राथमिक अवस्थाओं में हो सकती है। प्रोषितपतिओं के भी उत्तमा, मध्यमा आदि भेद हैं : पति प्रवास पर जानेवाले हैं यह केवल सुनकर जो व्याकुल होता है वह उत्तमा; पति जब प्रत्यक्ष प्रवासपर जा रहे हैं, उसे देख जो व्याकुल होती है वह मध्यमा; पति के प्रवास जानेपर जिसको विरह वेदना मालूम होती है वह अधमा।

प्रोषितपतिका इस विषय पर गाथा सप्तसई में कई सुभाषित मिलते हैं। प्रवस्यत्पतिका का (क्र. ४५) यह उद्गार सुनिए :

कल्लं किल खरहिअओ पवसिहिइ पिओत्ति सुण्णइ जणम्मि
तह वट्ट भअवइ णिसे जह से कल्लं चिअ ण होइ॥

भोर होते ही निष्ठुर पति प्रवास पर जानेवाला है यह वार्ता लोगों से सुनती है और कहती है—भगवती रजनी, तू इतनी वृद्धिंगत हो जा कि भोर ही होने न पाए।

इस नायिका को अपने नर के बारे में यह वार्ता अन्यों से क्यों मालूम होनी चाहिये? यह उद्गार सम्भवतः संध्या समय का होगा। संसार के झमेलों में और संयुक्त परिवार के पचड़ों में फँसे हुए पति-पत्नी को तड़के ही अपने सुखदुख की बातें करने के लिए मौक़ा कैसा मिलेगा? इसलिए नायिका ने संध्या समय पर आनेवाली रात्रि से उपरोक्त प्रार्थना की है। रजनी वृद्धिंगत नहीं होगी यह उसे पूरी तरह से मालूम है। जो होता नहीं है, और नहीं होनेवाला है उन्हीं के लिए तो हम अक्सर प्रार्थना करते रहते हैं। नायक और नायिका दोनों ने वह रात एक दूसरे के सहवास में बीता दी। मुझे छोड़कर न जाइए, कह कर नायिका ने नायक से तरह तरह की आर्जुये की होंगी और नायक ने उसको भाँति भाँति से समझाने का प्रयत्न किया होगा। घरबार तो चलना चाहिये? द्रव्यार्जन के लिए प्रवास पर जाना ही होगा। अन्ततः प्रवास के दिन देखते देखते गुज़र जाएँगे इस प्रकार की दलीलें उसने पेश की होंगी; विश्वास दिखाया होगा। प्रवास के दिन आज कल कहते बीत जायेंगे, ऐसे कारण बताये होंगे, सान्त्वनाएँ दी होंगी। आखिर सुबह होती ही है और पति प्रवास पर चला जाता है। गाथा सप्तशती में प्रवसत्पतिका का (क्रः ६८) यह उद्गार देखिये:

रमिऊण पअं पि ण गओ जाहे उवऊहिउं पडिणिउत्तो
अहअं पउत्थवइआ व्व तक्खणं सो पवासि व्व॥

रममाण होने के बाद वह प्रवास पर चले, एक कदम भी बढ़ाया होगा कि मुझे आलिंगन देने वापस आए। बीच के एक क्षण में वह प्रवासी बन गये और मैं विरहन।

पत्नी की यह हालत देख कर अपने विरह में यह जिन्दा नहीं रह सकेगी ऐसा विश्वास पति को होता है और प्रवासपर जाने का अपना इरादा बदल देता है।

गाथा सप्तशती (क्रः ७८०) की विगलित-प्रवासपतिका का यह उदाहरण देखिये :

आउच्छणोवऊहणकंटसमोसरियबाहुलइयाए।
वलयाइ पहिअचलणे बहूए णियलाइ व पडंति॥

पति प्रवास पर जानेवाले थे। पत्नी ने उसके गले में बाँहें डाल दीं और आलिंगन का दाब छुटा तब उसकी कलाईयों पर के कंगन टूटकर पति के चरणों में जा गिरे; मुसाफिर को ऐसा लगा कि मानों पैरों में बेडियाँ सी पडीं।

पति के प्रत्यक्ष प्रवास पर जाने के पहले नायिका की यह अवस्था है, फिर जिसका पति बहुत दिनों से प्रवास पर गया हुआ है उसकी क्या हालत होगी? प्रोषितपतिका को अंदेशित करके निकाले हुए यह उद्गार (गाः सः क्रः ७७८) सुनिए:

अज्जं चिअ छणदिअहो मा पुत्ति रुएहि एहइ पिओ त्ति।
सुण्हं आसासंती पडियत्तमुही रुवइ सासू॥

बेटी, तुम्हारा पति जरूर वापस आएगा, आज त्यौहार का दिन है रोओ नाः इस तरह आश्वासन दे कर सास ने नायिका को तसल्ली दी और स्वयं मुँह फिराकर रोने लगी।

इस प्रकार प्रोषितपतिकाएँ विरह की अवधि में शुष्क होती जाती हैं। पति के संकल्पित प्रवास की दीवार पर निकाली गयी मापनरेखाओं से रोज एक एक को काटकाटकर दिन बिताती है। और कल्पना से ही अपने प्रियतम के सहवास का लाभ उठाती हैं। इस प्रकार नायिका जब अपना दूभर जीवन बिताती रहती है तो यकायक खबर आती है कि पति प्रवास से वापस आ रहा है। फौरन वह आँगन के प्रवेश द्वार के पास जाती है और भाल पर हाथ रखकर दूर दूर तक देखने की कोशिश करती है। वह देखो, वह आया भी।

अत्थक्कागअदिट्ठे वहुआ जामादुअम्मि गुरुपुरओ।
जूरइ णिवडंताणं हरिस विफंदत वलआणं ॥ ६१६ ॥

पति को यकायक आता हुआ देखकर वधु को इतनी खुशी हुई कि उसके हाथ के कंगन नीचे गिरे। उस वक्त गुरुजन आसपास में थे उनका उसे गुस्सा आया।

कंगन गिर गये इसलिये कि वह विरह से कृश हो गयी थी, गुरुजनोंपर गुस्सा आया, वह इसलिये कि अगर वे वहाँ न रहते तो वह खुशी से अपने पति के गले में बाँहें डालती और अपने आनन्दाश्रुओं से उसका हृदय और कन्धा भींगो देती! इस नायिका को अवसित-प्रवास-पतिका यह संज्ञा है।

शृङ्गारमञ्जरी में उसका जो लक्षण बताया है, वह है :

प्रवासादागतनायकापेक्षासन्तोषकृतप्रयत्ना।

कोई कोई इसका समावेश स्वाधीनपतिका इस वर्ग में करते हैं, क्योंकि पति उसके अधीन होता है। कोई उसे वासकसज्जा भी कहते है क्यों कि वह पति के आगमन की अपेक्षा किये हुए है। परन्तु उपरोक्त उदाहरणों में अभिलक्षित परिस्थिति यदि हो तो? सम्भवतः ऐसी परिस्थिति मे उसको प्रोषितभर्तृका वर्ग में रखना होगा। पति वियोग के कारण जो कृश बनती है वह स्वाधीनभर्तृका होती है; परन्तु यह आगमन अनपेक्षित होने के कारण वह वासकसज्जिका वर्ग मे अन्तर्हित नहीं की जा सकेगी!

प्रोषितपतिका इधर के प्राचीन कवियों एवं आलंकारिकों की, बड़ी रुचि का विषय है। उन दिनों प्रवास काल अनन्त विपदाओं की अकथ कहानी थी, फलतः प्रवासी सुरक्षितपन से वापस लौटने की सम्भाव्यता बहुत कम थी। अनन्तर प्रवास की अवधि रही प्रदीर्घ; इस के कारण कभी कभी प्रोषितपतिकाओं की अवस्था आसन्नमरण बन जाती थी। ससुराल पर केवल पतिमात्र का आधार और वह प्रवास का यात्रिक बना, तब पूछने की आवश्यकता भी क्या है? उनकी स्थिति कितनी निराधार होती होगी! तथापि घर-बार का खर्च देखते हुए आमदनी के लिए बालिग या नाबालिग मर्द को प्रवास को जाना ही पड़ता। उपरान्त एक मर्तबा अपने काम के लिए घर से निकले कि फिर मुद्दत के गुजरने मे पहले वापस आना मुश्किल बन जाता था! इधर नायिकाएँ व्याकुलिता बन जाती थीं! प्रत्येक सुभाषित संग्रह मे प्रोषितपतिकाओं के कई उदाहरण पाये जाते है। उनके अवलोकन से यों कहा जा सकता है कि उनके नायक सामान्यतः सुसंस्कृत एवं भद्र स्थिति के होंगे। प्रोषितपतिका की विकलता दारिद्र्य की आग के कारण कभी चीखती हुई अवलोकित नही होती। सिवा इसके कि विपन्न दरिद्र लोग जब उदरभरणार्थ स्थलान्तर करते है तब उनके साथ पूरा का पूरा घरबार होता है। नायक का प्रवास पर जाने के हेतु का पता अथवा विवरण कहीं भी दृगोचर नहीं होता। इतिहास के मराठा राज्यकाल में सर्जित लावणियों में कई प्रोषितपतिकाएँ पाई जाती है। उनके पतिराज लड़ाइयों पर जाते थे। विभिन्नता इस स्थिति मे भी विलोकित की जा सकती है कि जवानी मे मतवाली बनी ये नायिकाएँ विरहवेदनाओं से मर्मोमती नहीं है। संस्कृत एवं प्राकृत साहित्य के नायकों का प्रवास तथा नायिकाओं का रोना अप्राकृतिक जँचता है। विरह काल मे नायिकाओं का कृश हो जाना, बालों को जटाओं की रुखाई मिलना, उपरान्त प्रवास के संकल्पित दिनों की गिनती करना, अनन्तर उस में भ्रान्ति के कारण भूलें करना—यह सब बड़ा अतिशयोक्तिपूर्ण, अव्यावहारिक तथा अस्वाभाविक भाता है। संकेतों मे तो यही सबसे बड़ा धोखा होता है। कला साहित्य की क्या कहे, इसके कारण साक्षात् जीवन भी जड़ तथा निष्प्राण बनता है।

विरहोत्कण्ठिता :

भरत ने नाट्यशास्त्र (२२: २०६) में विरहोत्कण्ठिता की व्याख्या इस प्रकार दी है :

अनेक कार्यव्यासङ्गात् यस्या नागच्छति प्रियः ।
तस्यानुगमदुःखार्ता विरहोत्कण्ठिता मता ॥

कार्य व्यापृति के कारण प्रियकर संकेत स्थान पर आ नहीं सका, इस कारण जो दुःखार्ता बनी है, वह विरहोत्कण्ठिता ।

रसमञ्जरी में इस नायिका को उत्का यह नाम दिया है और उसकी व्याख्या इस प्रकार की है :

सङ्केतस्थलं प्रति भर्तुरनागमनकारणं या चिन्तयति सा उत्का ।

प्रियतम के संकेतस्थान पर न आने से विषण्ण नायिका को उत्का कहते हैं; और कहा गया है कि इस वर्ग में प्रोषितपतिका का समावेश नहीं होता। ऐसी व्यवस्था के कारण प्रोषितभर्तृका, विरहोत्कण्ठिता और विप्रलब्धा इन के व्यक्तित्व में भिन्नता नहीं रह जाती। यह आक्षेप उपस्थित करते हुए शृङ्गारमञ्जरी में विरहोत्कण्ठिता की व्याख्या निम्नानुसार प्रस्तुत की है :—

निवास एव कार्यान्तरव्यासङ्गप्रयुक्तप्रियविरहवती विरहोत्कण्ठिता ।

नायक और नायिका एक ही निवासस्थान में होने पर भी जिसका प्रियतम के साथ मिलन नहीं हो सकता और जो इस विरह के कारण व्याकुल हो गयी है वह विरहोत्कण्ठिता ।

विरहोत्कण्ठिता के बारे में प्रियतम के न आने के लिये किसी अन्य स्त्री का प्रेम कारण न हो, इस तरह दशरूपक मे स्पष्टतया लिखा है।

विरहोत्कण्ठिता के मुग्धा, मध्या, प्रौढा, परकीया, और सामान्या—ये पाँच उपभेद रसमञ्जरी मे दिए हैं। शृङ्गारमञ्जरी ने शृङ्गाररस के अनुरोध से सम्पूर्णतया नवीन वर्गीकरण प्रस्तुत किया है, जिसके अनुसार कार्यविलम्बितसुरता तथा अनुत्पन्नसम्भोगा इन नये वर्गों की कल्पना की है। कार्य विलम्बित सुरता (चिरयति कान्ते रत्यर्थं या खिन्ना) यानी कामधाम के कारण प्रियकर को हुए विलम्ब के कारण व्याकुलिता। नायिकाओं के मूलगामी वर्गीकरणानुसार इस वर्ग के पाँच उपभेद कल्पित किए हैं। मुग्धा की कल्पना में इन भावनाओं की स्थितियाँ असम्भवनीय होने के नाते उसे इस वर्गीकरण में से हटाया है। अनुत्पन्नसम्भोगा (भविष्यद्रतिर्नास्तीति या खिद्यते सा भविष्यत्प्रियसङ्घटनापर्यंतं विरहोत्कण्ठाकुला अनुत्पन्नसम्भोगा।) सम्भोगाभिसार की अप्राप्ति के कारण विकलिता। अनुत्पन्नसम्भोगा, मे और चार उपभेदों की कल्पना की है : दर्शनानुतापिता, श्रवणानुतापिता चित्रानुतापिता एवं स्वप्नानुतापिता : प्रियकर के दर्शन, उसके वचन के श्रवण, उसकी प्रतिमा के अवलोकन एवं उसके स्वप्न मिलन के कारण उत्कण्ठिता।

विरहोत्कण्ठिता

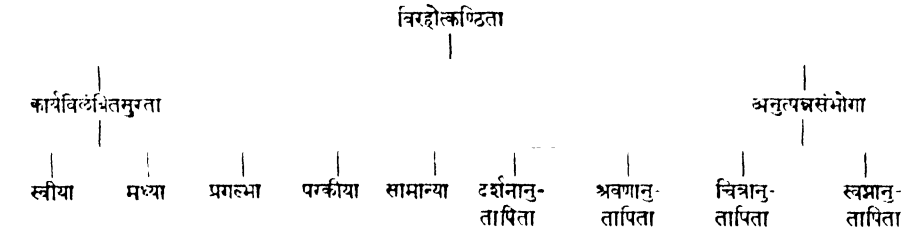

- कार्यविलम्बितसुरता
  - स्वीया
  - मध्या
  - प्रगल्भा
  - परकीया
  - सामान्या
- अनुत्पन्नसंभोगा
  - दर्शनानुतापिता
  - श्रवणानुतापिता
  - चित्रानुतापिता
  - स्वप्नानुतापिता

प्रियापर कितना भी प्रेम क्यों न हो लेकिन पुरुष को अपने कर्मकाण्ड की ओर ध्यान देना ही पड़ता है। काम में मग्न होने के कारण घर पर विलम्ब से आनेवाले पति को उद्देश्यित कर के गाथा सप्तसई की एक नायिका (क्र. ९७) कहती है :

कज्जाइं च्चिअ गरुआइँ मामि को वल्लहो कस्स?

मामी, पुरुषों को प्रेम की अपेक्षा काम का ही महत्त्व अधिक होता है। कौन किसका प्रियतम और कौन किस की प्रिया !

और एक नायिका (क्र. ४८६) सखी से कहती है:

अहअं विओअतणुई दुसहो विरहाणलो चलं जीअं।
अप्पाहिज्जउ किं सहि जाणसि तुं चेव जं जुत्तम्॥

विरह के कारण मैं क्षीण हो गयी हूँ। विरह की आग मैं सह नहीं सकती। जीवन चञ्चल है, सखी और क्या कहूँ? तुम्हें तो सब कुछ मालूम हैं: जो ठीक लगेगा सो करना।

कविवर जयदेव ने गीतगोविन्द के सप्तम् सर्ग में राधा की उत्कावस्था का वर्णन किया है। रसमञ्जरी की परिभाषा के अनुसार इस स्थिति का नामाभिधान विरहोत्कण्ठिता होगा; तथापि शृङ्गारमञ्जरी की परिभाषा के अनुसार उसको कोई स्थान नहीं है।

विरह की उत्कण्ठित नायिका को कुछ भी रुचता नहीं, कुछ भी नहीं सूझता है। बदन पर चन्दन लगाती है फिर भी ज्वाला वैसी ही रहती है। बालों में फूल गूँथती है पर उत्कण्ठा की आग के कारण वह मुरझा जाता है। न घर में चैन है, न बागबगीचों में। उसे कुछ सान्त्वना मिल जाय इसलिए सखी वीणा पर कोई तान छेड़ने लगी, तो नायिका ने कहा: तोड़ दे उन तारों को। उसकी प्रिय हिरनी नायिका को खुश करने के लिए हमेशा की तरह उसकी जाँघपर अपनी ग्रीवा घिसने लगी, सिर्फ आदत के कारण नायिका ने उसको लाड किया, इतने में उसको दुत्कारा! उसको शान्त करने के लिए हवा की हिलोर उसके मुँह पर सुगंधी फूलों से भरी एक डाली को झुकाने लगी। नायिका ने उस डाली को ही तोड दिया। नायिका ने अपनी आर्त अवस्था का वर्णन अपनी सखी को इस तरह कहा कि: नहीं नहीं, सखी; मैं इस विरह की तीव्रता को सह नहीं सकती। प्राण मेरे मुँह को आये हैं जिसके कारण मैं साँसतक नहीं ले सकती। जहाँ देखो वहाँ मुझे प्रियतम ही दिखाई देते है। और अब मानो साफ़ दिखाई देने लगे हैं, उतने में वह वहाँ से अदृश्य होते है! सखी उठो तो चलो, प्रियतम जहाँ भी होंगे उनको ढूंढ निकालो, नही तो मेरा बुरा हाल होगा।

विप्रलब्धा:

रसमञ्जरी में विप्रलब्धा का लक्षण इस प्रकार बतलाया है:

सङ्केतनिकेतने प्रियमनवलोक्य समाकुलहृदया विप्रलब्धा। अस्याश्चेष्टा।
निर्वेदनिःश्वाससन्तापाऽऽलापभयसखीजनोपालम्भचिन्ताऽश्रुपातमूर्च्छादयः।

नायिका संकेतस्थान पर आयी परंतु प्रियतम को वहाँ न आया देखकर व्याकुल बनी, वह विप्रलब्धा है। इसके लक्षण हैं: अश्रुपात, उसास, खेद, मूर्च्छा, सखियों का तिरस्कार, सन्ताप आदि।

स्वीया ने या सामान्या ने अगर स्वस्थान पर संकेत किया हो तो उसका समावेश इस व्याख्या में नहीं होता। प्रतापरुद्रीय की (१ : ४७) यह व्याख्या अधिक व्यापक है।

क्वचित्संकेतमावेद्य दयितेनाथ वञ्चिता।
स्मरार्ता विप्रलब्धेति कलाविद्भिः प्रकीर्तिता

प्रियकर के संकेतानुसार संकेत स्थानपर आगमन करने वाली, लेकिन उसके आगमन के कारण व्यथितार्ता नायिका विप्रलब्धा है।

परन्तु इस व्याख्या मे दूतिवञ्चिता का समावेश नहीं होता और वञ्चना विप्रलब्धा का मुख्य लक्षण है; इसलिए शृङ्गारमञ्जरी ने उसकी अधिक व्यापक व्याख्या इस प्रकार की है:

वञ्चना प्रयुक्तविरहवेदनावती विप्रलब्धा।

वञ्चना के कारण विरही व्याकुलिता, विप्रलब्धा है।

शृङ्गारमञ्जरी में विप्रलब्धा के दो भेद दिये हैं; नायकवञ्चिता और सखीवञ्चिता। लेखक कहता है: सख्या नायकं क्वचितोद्दोपायित्वा केलीस्थलमानीय परिहासार्थं वञ्चिता सखीवञ्चिता। सखी ने नायिका की हुई यह वञ्चना क्रीडास्वरूपी, कृत्रिम और क्षणिक होने से ये उपभेद मान्य नहीं होंगे; परंतु स्वीया, मध्या, प्रगल्भा, परकीया व सामान्या नायिका वर्ग के उपभेद यहाँ सर्वमान्य हैं।

दूती या सखीवञ्चिता का अच्छा उदाहरण गाथा सत्तसई में (क्र. ८५०) पाया जाता है।

सो णा गओ त्ति पेच्छह परिहासुल्लाविरीऍ दूईए
णूमंतीअ पहरिसो ओसट्टइ गण्डपासेसु ॥

नायिका संकेत स्थानपर आयी। नायक वहाँ न था। इसलिए उसे बुलाने के लिए सखी को भेजा। काफी देर के बाद सखी अकेली वापस आयी और कहने लगी—देखो, मैं ने क्या पहले ही नहीं बताया था कि वह आज आयेगा ही नहीं, उसको अवकाश ही नहीं। लेकिन यह कहते वक्त उसके मुखपर हँसी भरी थी। तब नायिका ने सच्ची बात जान ली। उसने समझ लिया कि प्रियतम जल्दी ही आनेवाला है।

विप्रलब्धा की अवस्था बहुत ही करुणास्पद है। बहुत कोशिश कर के संकेत निश्चित करना, और भी कोशिश करके मिलनस्थान निश्चित करना, बहुत से विश्वासनीय कारण बताकर घर से बेमौके बाहर निकलना और तिसपर प्रत्येक प्रयत्न के साथ समागम की उत्कण्ठा तीव्र होते जाना और सब से मजेदार बात यह कि इतना सब कुछ करने के बाद प्रियतम का वहाँ न होना! कैसी निराशा और कितना अपमान।

गाथा सत्तसई (क्र. ८४८) मे कवि कहता है।

दूई ण एइ चंदो वि उग्गओ जामिणी वि वोलेइ।
सव्वं सव्वत्तो च्चिअ विसंठुलं कस्स किं भणिमो ॥

सखी के गये काफी देर हो गयी। वह अभीतक वापस आयी नहीं। क्या हुआ किस को पता? चंद्र उग आया। रात ढलने लगी। चारों ओर का वातावरण भी अधीर हो उठा। तिसपर मन मेरे मन की व्याकुलता भी क्षण प्रति क्षण बढती जा रही। मैं, कहूँ भी किसे?

नायिका को निराश करनेवाला नायक भी कितना निर्दय! वह तो अधम नहीं, अधमाधम है! प्रेयसी का इस से अधिक अपमान कौन और कैसा कर सकता है? वह तो अकेली जंगल मे बैठी है; उत्सुक दृष्टि से वह चारों ओर देखती है! बगल मे सखी भी नही है। साथ मे सिर्फ प्यारी लाड़ली और सुंदर हंसी है, वह भी मानो नायिका का उपहास ही कर रही है!

ख ण्डि ता :

रसमञ्जरी में खण्डिता की व्याख्या इस प्रकार दी है:

अन्योपभोगचिन्हितः प्रातरागच्छति पतिर्यस्याः सा खण्डिता।

गाथा सत्तसई (क्र. ६५३) मे खण्डिता का एक सुंदर उदाहरण आया है, जो इतना समर्पक है कि लगता है कि उसी से यह व्याख्या बन पड़ी:

पच्चूसागअ रञ्जिअदेह पिआलोअ लोअणाणन्द
अण्णत्त खविअसव्वरि णहभूसण दिणवइ णमो दे ॥

सुबह उगनेवाले सूरज को और सुबह घर में आनेवाले प्रियतम को उद्देशित कर के कहा है—सूर्य-पत्नी: हे दिनपति सूरज, तू कहीं और रात बिताकर सुबह उठता है, तेरी देह कैसे लाल बन गयी है। तेरा

दर्शन हृदय को प्रिय और आँखों को आनन्द देनेवाला है। तू भूषण है। तुझे मेरा प्रणाम। और पतिपक्षी को उद्देश्यित कर के—हे दिनपति-सिर्फ दिन में घर में रहने वाले पतिदेव-तुम सुबह घर आते हो तो रात में कहीं अन्यत्र तेरे शरीरपर अङ्कित हुए रंगों के चिह्न दिखाई देते हैं; तुम देखने में कितने मधुर हो पर तुम से हमें सिर्फ नेत्रसुख ही मिलता है। तुम सारी रात और कहीं किसी स्त्री के सहवास में बिताते हो। तुम अन्य स्त्रियों को भूषण देते हो और उनके द्वारा अर्पित दाँतों और नखों के क्षतों को धारण करते हो। ऐ, दिनपति तुम्हें दूर से ही नमस्कार—क्यों कि तुम्हारा और हमारा सम्बन्ध केवल नमस्कार के लिए ही है!

रसमञ्जरी की इस परिभाषा पर शृङ्गारमञ्जरी के द्वारा कई आक्षेप उठाए गए है। अन्यवनिता के उपभोग के चिह्न नायक के शरीर पर दृग्गोचर हो ही यह अपेक्षित नहीं है। जिसने अपने पति की किसी अन्य स्त्री से अनुराग रखने की वार्ता सुनी है तथा अन्य स्त्री के अनुराग के कारण अपनी उपेक्षा जिसने अनुभूत की है ऐसी नायिकाओं का स्वीकार खण्डिता वर्ग में ही करना होगा। उपरान्त प्रातःकाल पर ही नायिका को इसका ज्ञान हो जाय ऐसा आग्रह भी क्यों? खण्डिता संज्ञा शक्त्यर्थवाचक है। अतः नायक के अपराध के कारण जिसका दिल टूटता है (कोपेन शकलीकृतप्रेमवती खण्डिता।), वह खण्डिता। नायक का प्रेमापराध ध्यान में आने के कारण जिस का मन लुब्ध बना है, जिसके मन में ईर्ष्या जलती है (ईर्ष्यावती खण्डिता) तथा जिसने मान धारण किया है, ऐसी मानवती भी मूलतः खण्डिता है। नायक का अपराध जितनी समीपता का अथवा सुस्पष्टता का उसी अनुपात में नायिका के मान का परिमाण। प्रियकर के अपराध के प्रयत्न के कारण मन में निर्मित कोप जो वक्रोक्ति के मार्ग की सहायता से व्यक्त करती है वह भी खण्डिता है। पति अथवा प्रियकर के अन्य सम्भोग के कारण पत्नी अथवा प्रेयसी की मानखण्डना होती है। प्रेयसी की दूती के संग या सखी के साथ अथवा अन्य नायिकाओं से नायक का प्रत्यक्ष सम्बन्ध हुआ हो अथवा उनके बारे में उसके मन में आसक्ति निर्माण हुई हो और वह व्यक्त हुई हो, नायिका को इसका प्रत्यक्ष प्रत्यय हुआ हो अथवा इस विषयक किंवदन्तियाँ उसके कानों पहुँची हो आदि कारणों में जिसकी मानखण्डना हुई हो वह खण्डिता है। कलहान्तरिता को अष्टनायिकाओं में से एक विशेष वर्ग यद्यपि माना हो तथापि चूंकि वह अपने क्रोध को प्रथम अभिव्यक्त करती है अतः वह भी मूलतः खण्डिता ही होती है। खण्डिता अवस्था सिवा मुग्धा के सभी नायिकाओं में प्रकट होती है। मुग्धा के हृदय में प्रीति का विकास एवं प्रेमभङ्ग के कारण निर्मित होनेवाली ईर्ष्या की सम्भावना नहीं रहती।

इस विवेचन के द्वारा खण्डिता नायिका के प्रमुख उपभेदों का वर्गीकरण निम्नानुसार होगा :

खण्डिता

मानवती	धीरा	धीराधीरा	अधीरा	अन्यसंभोगदुःखिता

गुरु-मानवती	मध्य-मानवती	लघु मानवती	दूतीसंभोग दुःखिता	दूतीसमासक्ति-दुःखिता	इतर रतिश्रुति दुःखिता	ईर्ष्या-गर्विता

स्वीया, अन्या और सामान्या तथा मध्या, प्रगल्भादि नायिकाओं के उपभेदों के अनुसार इस वर्ग के और उपभेद हो जायँगे।

प्रियतम के प्रेम में किये गये अपराध से चित्त में निर्माण हुए क्रोध के कारण नायिका जो मौन धारण करती है उसे मान कहते है। मान यह गुरु, मध्य या लघु हो सकता है। लघु मान विनोद की वार्ता या कथन से शान्त होता है। मध्य मान शान्त करने के लिये कसमे वगैरह खानी पड़ती है और बहुत कोशिश पड़ती है। गुरु मान शान्त करने के लिये मौका आनेपर पाँव भी पकड़ने पड़ते है, अर्थात् बहुत प्रयत्न करना पड़ता है।

नायक की प्रेम विषयक उक्तियों एवं अन्य स्त्रियों सम्बन्धी धारणाओं की ओर नायिका की सूक्ष्म दृष्टि होती है। उस नज़र से कुछ भी नहीं बचता। इतना संशय और इतना संशय कि नायक इधर उधर देख भी नहीं सकता! गाथा सत्तसई (क्र: ९३३) की एक नायिका प्रियतम से कहती है :

तइआ मह गंडत्थलणिमिअं दिट्ठिं ण णेसि अण्णत्तो
एण्हिं स च्चअ अहं त अ कवाला ण सा दिट्ठि ॥

उस वक्त तेरी निर्निमेष दृष्टि मेरे कपोलों पर थी, एकाग्रता से जम गयी थी। अब वही मैं हूँ और तुम्हारी नजर तक जाती नहीं!

नायिका के कपोल मधुर और आयने की तरह चमकनेवाले थे; आसपास की चीजें उनमें प्रतिबिम्बित हुई थीं; इतने चमकते थे वे कपोल, अधिक तो क्या नायिका के उन कपोलों पर उसकी सखी का प्रतिबिंब झलक रहा था! नायिका के सामने उसकी सखी की ओर ताकना नायक के लिये अशक्य था। इसलिये उसने उन कपोलों के आयनो में सखी का रूप जी भरकर देखा; वह भी नायिका की नजर से छुटा नहीं इस (क्र: ९३२) गाथा का नायक इससे भी एक कदम आगे बढा है।

पच्चक्खमंतुकारअ जइ चुबासि मे इमे हअकवोले।
ता मज्झपिअसहीए विसेसआ कीस तण्हाओ ॥

प्रतिबिंब अप्राप्य था सो उसने नायिका के कपोलों का ही चुम्बन ले लिया और इतने आवेश के साथ कि नायिका को वह अभूतपूर्व लगा। उसने आसपास देखा। बगल में सखी थी। इस ओर इसके कपोल भींग गये थे और, उस ओर उसके। इसके गाल प्रत्यक्ष चुम्बन के कारण और उसके मनोभावनाओं के उद्योग के कारण। फौरन मानो बिजली गरजी। नायिका ने कहा—निर्लज्ज, तेरा अपराध मैं ने अपनी आँखो से देखा। फिर क्या करता नायक। दोनों हाथ और मस्तक उसके पाँवोंपर रखे। पर औरतों के झंझट ही ज़्यादह! नायिका के पाँव में घुंगरू थे और उन में नायक के बाल फँस गये। गाथा सत्तसई में कवि (क्र: १८८) कहता है :

णेउरकोडिविलग्गं चिउरं दइअस्स पाअपडिअस्स
हिअअं पउत्थमाणं उम्मोअन्ती च्चिअ कहेइ ॥

नायिका गुस्से में थी पर नायक की अवस्था देखकर उसको दया आयी। उसने अपने हाँथों से उन बालों को उलझा दिया और जब उसने उन मुलायम बालों में से अपनी उँगलियाँ फिराई तो उसका मान मिट गया। कभी कभी ऐसा भी होता है, कि नायिका अपनी प्रियसखी को संदेसे के साथ नायक के पास भेजें वहाँ उनका ही स्नेह जमे। गाथा सत्तसई (क्र. ८५५) की ऐसी ही दूतिवञ्चिता नायिका सखी से कहती है :

जं तुह कज्जं तं चिअ कज्जं मज्झ त्ति जं सआ भणसि
ओ दूइ सच्चवअणे अज्ज सि पारं गआ तस्स ॥

सखी आजतक हमने आपस में कुछ भेदभाव माना नहीं। एक दूसरे के काम को हमने अपना ही समझकर किया। सचमुच सखी, आज हम दोनों के प्रेम की सीमा हो गई।

गीतगोविन्द में खण्डिता नायिका का वर्णन आठवें सर्ग के सतरहवें प्रबन्ध में पाया जाता है। राधा कहती है काजल से श्याम बने नयनों के चुम्बन लेने के कारण तेरे होंठ नीलवर्ण बने हैं। नीलकमल पर सुवर्णाक्षरों से लिखा जाय उसी भाँति नखक्षतो ने रतिविजय का लेख तेरे शरीर पर लिखा है। जा, जा, उसी के पास जा। मेरे सामने पलभर भी मत ठहर।

यह खण्डिता देखिये। प्रियतम की बाँट जोहकर बेचारी पहले ही सूख गयी थी। आखिर किसी तरह प्रियतम घर आये—हाँ, वे उसके प्रिय थे! कोई भी खुश हो जाय ऐसा ही था वह! तरुण, सुंदर

सुदृढ, रसिक और विलासी। यह जितना उसका सौभाग्य था उतना ही दुर्भाग्य; क्योंकि वह उसका तो क्या और भी बहुतेरी स्त्रियों का प्रिय था; ऐसी उड़ती खबर तो उसने भी सुनी थी! पर इन बातों पर विश्वास करने इतनी वह कमजोर नहीं थी। उसकी वाणी इतनी मधुर थी कि उसने कहे हुए वचनोंपर विश्वास करना ही पड़ता था। लेकिन आज वह तो जरा देरी से ही आया, जग थका हुआ भी था। यह क्या–उसके शरीर पर ताजे नखक्षत थे! अपराध के वे प्रत्यक्ष प्रमाण थे। अब कपड़ों से उन्हें ढँकने की वह कोशिश कर रहा था जो सधा नहीं। इन चिह्नों को देखते ही उसके मन में क्षोभ जागा। फिर उसकी आँखों से आँसू बहने लगे। उसे अपनी दीनता का अनुभव हुआ। भविष्य के बारे में चिन्ता लगी। अपराध था तो उसका, लेकिन उसे ऐसा लगा मानो कसूर उसने ही किया है। उसकी नजर से नजर लगाने की हिम्मत उसे नहीं हुई। वह नायक से सफाई चाहती थी और उसके मुँह से शब्द भी न निकले। होठ बन्द करके उसने चुप्पी साधी। नायक की ओर पीठ कर के वह खम्भे को टेककर बैठ गयी। अब वह जरा विन्ती करेगा, पाँव पकडेगा, वचन देगा और नायिका को किसी तरह खुश करेगा और उनके जीवन का यह चक्र ऐसा ही चलता रहेगा।

क ल हा न्त रि ता :

रसमञ्जरी मे कलहान्तरिता की व्याख्या इस प्रकार दी है :

पतिमवमत्य पश्चात्परितप्ता कलहान्तरिता ।

गुस्से में प्रियतम का अवमान करने के कारण और फलतः उसके चले जाने के बाद पश्चाताप करनेवाली नायिका कहलान्तरिता है।

शृङ्गारमञ्जरी की परिभाषा अधिक प्रभावी है :

कोपात्कान्तं पराभूय पश्चात्तापसमन्विता कलहान्तरिता ।

क्षोभ के आवेश में प्रियकर को दुत्कार देने के बाद जो पश्चात्तापित होती है, वह कलहान्तरिता !

इस नायिका के दो भेद किये है: ईर्ष्या कलहान्तरिता–प्रियमन्यकान्तासक्तं पराभूय पश्चात्तापवती=अर्थात् किसी अन्य स्त्री पर आसक्त होने की वजह से प्रियतम को दुत्कारती है, और : प्रणय कलहान्तरिता=स्वाज्ञोल्लंघनजनितकोपेन नायक पराभूयं पश्चात्तापवती=अर्थात् वह जो अपनी आज्ञा या इच्छा का उल्लंघन करने के कारण प्रियतम को दुत्कारती है; कारण जो हो बाद मे पछ्तातती है। आरम्भ में कलह और अन्त में पश्चात्ताप, ये दो इस नायिका के मुख्य लक्षण है। नायिका के प्राथमिक वर्गों में से मुग्धा को छोड़कर सब में यह अवस्था हो सकती है।

नायिका वैसे तो कलह कर बैठती है, परंतु जल्दी ही यह बात उसकी समझ मे आती है कि नायक के जीवन के साथ उसका जीवन इतना बन्ध गया है कि नायक के बिना उसके जीवन मे कुछ भी शेष नहीं है। सखियाँ नायिका से कहती है कि प्रेम का धागा बहुत ही नाजुक है, जरा ज़्यादह खिंचा तो टूट जाता है। पर कोई कोई नायिकाएँ स्वभावतः अशांत होती है। गाथा सप्तसई में (क्र. ६०) एक ऐसी नायिका का वर्णन किया है :

चित्ताणिअदइअसमागमम्मि कअमण्णुआइँ भरिऊण
सुण्णं कलहाअन्ती सहीहिँ रुण्णा ण ओहसिआ ॥

पुरानी क्षोभ की बातें याद कर अकारण कलह को बढावा देनेवाली स्त्री के प्रति उसकी सहेलियों को खेद होता हैं, वे उपहास नहीं करतीं।

पति से पराकोटि की एकनिष्ठता की अपेक्षा करनेवाली नायिकाएँ स्वयं दुःखी होती है और अपने पति को भी दुःखी करती है; और फिर एक दूसरे के दुःख से एक दूसरे को पश्चाताप भी होता है। खिंचने पर प्रेम का धागा टूट जाता है, फलतः घर की सारी शान्ति मिट जाती है, कौटुम्बिक जीवन नीरस बनता है। गाथा सत्तसई की (क्र. ४२०) कलहान्तरिता कहती है :

अह सो विलक्खहिअओ मए अहव्वाएँ अगहिआणुणओ
परवज्जणच्चरीहिं तुम्हेहिँ उपेक्खिओ णेन्तो ॥

मैं ही अभागन हूँ। उसने अनुनय किया। मैं ने ही उसको दुत्कारा। ऐ सखियों, वह जब जाने लगा तब तुम लोगों ने उसकी उपेक्षा की; तुम्हें दूसरों की क्या परवाह ? मेरे प्रियतम तो हमेशा के लिए चले गये।

अभिसारिका:

अमर कोश में अभिसारिका की व्याख्या (२-६-१०) इस प्रकार की है।

कान्तार्थिनी तु या याति संकेतं साभिसारिका।

संकेत निश्चित कर के जो प्रियतम से मिलने जाती है, वह अभिसारिका।

कोश की परिभाषा बिल्कुल नीरस है; अब भरतकारिका की परिभाषा देखिए :

उद्दाममन्मथमहाज्वरवेपमाना
रोमाञ्चकण्टकित गात्रलतां वहन्ती।
निःशङ्किनी व्रजति या प्रियसङ्गमाय
सा नायिका निगदिता त्वभिसारिकेति ॥

मन्मथ के आवेगों के कारण शरीर में सिहरन दौड़ आई है, गालोंपर रोमाञ्च उत्फुल्लित हुए हैं; ऐसी अवस्था में निःशङ्कता से जो प्रियकर से मिलने निकलती है, वह अभिसारिका।

आशय वही, पर नायिका की वृत्तियों का वर्णन यहाँ अधिक सुस्पष्ट है।

अमरकोश की अपेक्षा रसमञ्जरी की व्याख्या अधिक व्यापक है।

स्वयमभिसरति प्रियमभिसारयति वा या सा अभिसारिका।

स्वयं प्रेरणा से जो प्रियतम को मिलने जाती है या प्रियतम को मिलने बुलाती है, वह नायिका अभिसारिका है।

भरतकारिका, वसन्तराजीय, शृङ्गारमञ्जरी आदि ग्रन्थो की परिभाषाएँ अमरकोशानुकूल है तो साहित्यदर्पण, दशरूपक आदि ग्रन्थों की परिभाषाएँ रसमञ्जरी परक है। शृङ्गारमञ्जरीकार रसमञ्जरी के प्रति आक्षेप उठाता है। आक्षेप का आधार 'वासक' शब्द है। प्रियकर को सम्भोगार्थ विशिष्ट स्थानपर बुलानेवाली नायिका को वाससज्जिका कहा जा सकता है, न कि अभिसारिका। इस आक्षेप का खण्डन करते हुए कहा जा सकता है कि: वासकसज्जिका अपने निवास स्थानपर प्रियकर के स्वागत के लिए वस्त्रालङ्कारोंसहित सज्जित होती है। निवास स्थान को भी शृङ्गारित करती है। लेकिन अभिसारिका की बात अलग है। वह प्रिय को अपने निवास स्थानपर ही नहीं, अन्यत्र भी आमंत्रित कर सकती है।

जिन प्रहरो मे नायिका नायक को मिलने जाती है इसके अनुसार अभिसारिकाओ का वर्गीकरण किया है। छन्दोमञ्जरी के समान आगे कुछ संज्ञाओं का सुझाव किया जाता है :

दिवाभिसारिका=दिन में जानेवाली=दिने या अभिसरति सा ।
नीहाराभिसारिका=प्रातःकाल की धूसरों में से जानेवाली: ऊषा ।
माध्यान्हाभिसारिका=दोपहर की उष्मा में से जानेवाली: प्रभा ।
प्रदोषाभिसारिका=सन्ध्या के मन्द प्रकाश में से जानेवाली: संध्या ।
ध्वान्ताभिसारिका=कृष्णपक्ष मे रात के अंन्धःकार में से जानेवाली: कृष्णा ।
ज्योत्स्नाभिसारिका=शुक्लपक्ष में रात के चन्द्र प्रकाश में से जानेवाली: ज्योत्स्ना ।

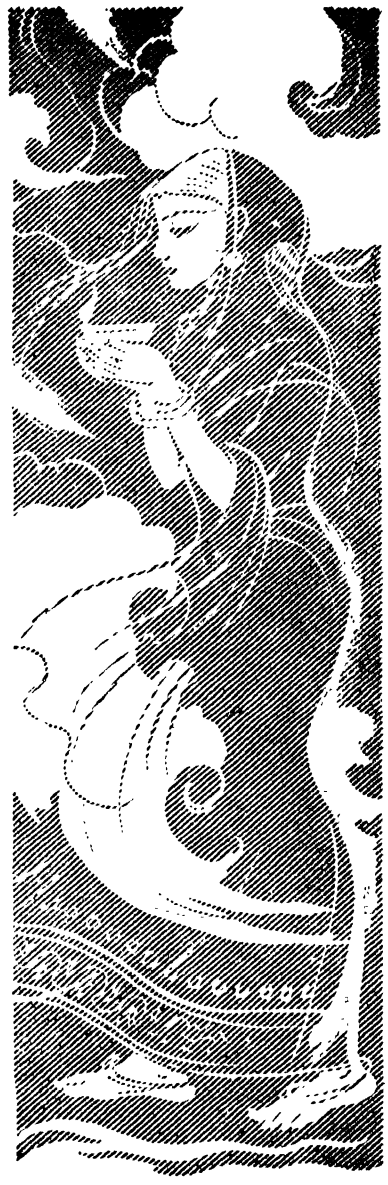

नीहाराभिसारिका प्रत्यूषा के गहरे धूसरों में से प्रियतम से मिलने जानेवाली नायिका है। यह कल्पना बहुत ही मधुर लगती है। गाथा सत्तसई (क्र. ६६३) मे भी इसका उल्लेख किया है। वहाँ बतलाया है कि ओसबिन्दु से किञ्चित् शुभ्र भासमान होनेवाले तील के खेतों में से चली गयी नीहाराभिसारिका की पगड़ण्डी हरी हो गयी है। दुर्दिनाभिसारिका, यह वह नायिका है जो आँधी से भी नहीं डरती। सतत वर्षा में भी घने मेढ में कुछ साहरा मिल जाता है। और ऐसे वातावरण मे एकांत भी नष्ट नहीं हो सकता। इसका उल्लेख गाथा सत्तसई (क्र. ५६३) में है। गणिकाभिसारिका पेशे से गणिका होते हुए भी केवल प्रेम से प्रेरित हो कर अभिसारिका बन अभिसार करती है; वसन्तसेना उसका योग्य उदाहरण है।

शृङ्गारमञ्जरी मे गर्वाभिसारिका नामक और एक वर्ग का निर्देश किया है, उदाहरण देखिए :

उपवनमतिरम्यं मञ्जुगुञ्जं पिकं यत
कुसुमितमतिदृश्यं द्राग्वसंतागमेन ।
पुरजनरमणीयेऽनङ्गयात्रोत्सवेऽस्मिन
मम तु परमलाभो यद्भवान अत्र दृष्टः ॥

उपवन कितना रम्य है ! वसन्तागमन के कारण फूल खिले हैं, खग कलरव चहकते हैं ! अनङ्गयात्रा के कारण कितने नागरिक एकत्र हुए हैं, देखा है आपने ? ऐसे प्रसङ्गपर मै यहाँ पधारी हूँ ! आपने भाग्य की कितनी सराहना करूं ? आपके दर्शन हुए, मुझे बडा सन्तोष है । अच्छा जी,—नमस्ते !

गर्वाभिसारिका आयोजना के अनुसार संकेत स्थानपर जाती है। तथापि प्रियकर का दर्शन होते ही संभोग संकेत की टालमटोल करती है और अचानक ही मानो उनकी भेट हुई है इस बहाने से आश्चर्य प्रकट करती है। स्वयं तो किसी अन्य कार्यार्थ अन्यत्र गमन करने के लिए चली थी, भाग्यवशात् इस दिशा की ओर मुड़ी है सो बहाना करते हुए मामूली बेतुका वार्तालाप कर, बिना उसे हाथ को स्पर्श करने का अवकाश दिए, अलविदा होती है।

अबतक इतना जो हुआ उसमे मानो पर्याप्त मान-खण्डना नही हुई, इसीलिए जाते-जाते एकाध बार अपाङ्गावलोकन करती है और जली ऊपर निमक छिटकाती है। इस प्रकार की नायिका प्रायः नागरिका, सुशिक्षिता और अपनी पारंचिता भी होती है। यदि संकेत स्थान निर्जन एवं सुरक्षित है और वह प्रसन्नचित्ता हो तो भी बाह्योपचारों की सीमा को उल्लंघित नहीं करने देती। केवल इसी विधि पर संतुष्ट होनेवाली इस वर्ग की अभिसारिकाएँ वर्तमान काल मे भी उपलब्ध है और बहुसंख्यात् भी !

स्वीया, अन्या तथा सामान्या और इस प्रत्येक वर्ग की मुग्धा, मध्या और प्रौढ़ा एवं उस प्रत्येक वर्ग की उत्तमा, मध्यमा और अधमा इस ढंग से अभिसारिकाओं के उपविभाग किए गए है।

स्वीया, पतिव्रता मानी जाती है और इसलिए बाह्यतः इस वर्ग का अभिसरण असम्भाव्य लगता है। परकीया नायिका, अभिसरण के लिए संकेत स्थान पर जाने के लिए क्यों तैयार हो? गुरुजनों की देखभाल के कारण परपुरुष को अपने घर लाना अथवा लिवा लाने का प्रबन्ध करना असम्भवनीय होता है; और यदि वह सधा तो भी ससुराल की ननन्दें, भौजाइयाँ और मायके के भाई, बहन आदि की कौतुहली और तीक्ष्ण तथा अप्रस्तुत आव-जाव के कारण सुविधाजनक स्थान अथवा मन-भाव

का एकांत मिलना नहीं है। अतः प्रिय को मिलने के लिए किसी अवसर से फायदा उठाते हुए या मार्मिक बहाना करते हुए घर के बाहर निकलना पड़ता है और संकेत स्थान पर जाना होता है। भले, फिर वह बहाना, आरतीवन्दना या मण्डी में जाने का अथवा उत्सव या कथा-कीर्तन का; या वह संकेत स्थान खानगी हो या सार्वजनिक हो! इस प्रकार अथवा तत्समान अड़चनों वश स्वीया भी पति के एकांत मिलन के लिए घर के बाहर किसी संकेतस्थान का आश्रय लेती है। और आजकल निवासस्थानों की कमी के कारण तो ऐसी अड़चनें बार-बार खलती है। अतः इस वर्ग की अभिसारिकाएँ प्रति पग मिलती है। यह आवश्यक नहीं कि अभिसारिका का प्रिय यह केवल परपुरुष ही हो; और इसीलिए अभिसारिका के वर्ग मे स्वीया को भी स्थान दिया गया है।

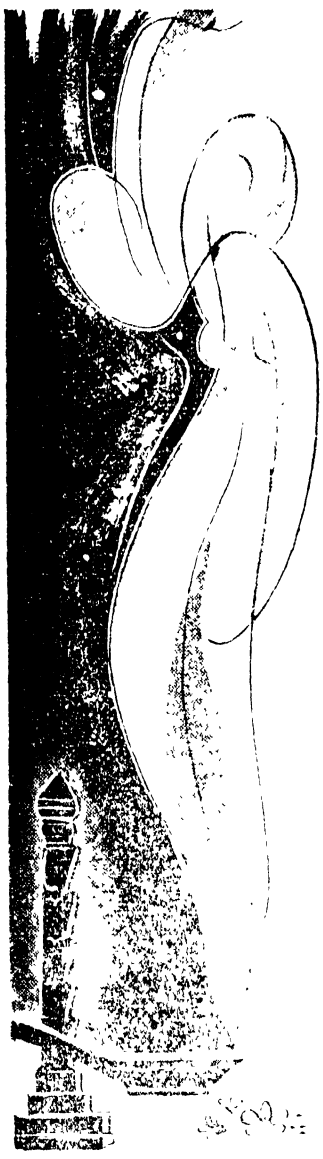

शृङ्गारमञ्जरी की स्वीया-अभिसारिका का उदाहरण देखिए :

शीघ्रं प्रयाहि सुभगे प्रियसान्निधान-
माकल्प ऐपरमणीयतरस्तवाङ्गे ।
त्वद्दर्शनोत्सुकदृशस्सुभगेऽधुना न
पत्युर्गजेन्द्रगमनात्वमभीष्टमेतन् ॥

सुभगे! अरी, पति मिलन के लिए अधीर बना है और तुम तो गजेन्द्रगति सी धीमी-धीमी डुलती-चलती हो! यह तो उसे पसन्द नहीं आने का, जरा जल्दी तो चल!

अभिसारिका वर्ग मे के मुग्धा के स्थान के बारे मे विवाद है। मुग्धा के मन्मथपर क्रीडा का अवगुण्ठन होता है तथा रति के प्रति अनौत्सुक्य। ये सब लक्षण सबों के द्वारा प्रधान माने गए है। उपरान्त कामार्ता शिथिलत्रपा आदि लक्षण भी अभिसारिका के नाम बतलाए जाते है। और यह होने के पश्चात् भी अलंकारिकों ने अभिसारिका वर्ग में मुग्धा को प्रश्रय दिया है। मुग्धा के माने अनभिज्ञा नहीं तथापि साहित्य-शास्त्र की मुग्धा के रूप में! कइयों ने मुग्धा-अभिसारिकाओं के उदाहरण दिए हैं। रसमञ्जरी का उदाहरण देखिए :

दूती विद्युदुपागता सहचरी रात्रिः सहस्थायिनी
दैवज्ञो दिशति स्वनेन जलदः प्रस्थानवेलां शुभाम् ।
वाचं माङ्गलिकीं तनोति तिमिरस्तोमोपि झिल्लीरवैः
जातोऽयं दयिताऽभिसारसमयो मुग्धे विमुञ्च त्रपाम् ॥

उपरोक्त में से केवल 'मुग्धे विमुञ्च त्रपाम्' वाला भाग ही मुग्धा को अनुलक्षित है। शृङ्गारमञ्जरी के उदाहरण का केवल 'बालां लालय लीलया मृदुलया मृद्वीं शिरीषादपि' इतना ही अनुच्छेद मुग्धा के लक्षणों के साथ मेल खा सकता है। बाला संभोग को योग्य, इतना ही नहीं सहवास से वह वृद्ध को भी यौवनावस्था प्राप्त करवा दे सकती है इस प्रकार का वर्णन आयुर्वेद मे पाया जाता है। कामशास्त्र कार भी उसके उन्हीं विशेषों को बतलाना भूले नहीं है। तो फिर मुग्धा उन नियमो के अनुसार क्यों न चले ? सम्भवतः इसका उत्तर होगा कि उनकी संवेदना की बाला ज्ञातयौवना विश्रब्धनवोढा की सीमाओ से परी है। अभिसारिका के पास कपट कौशल, नैपुण्य और साहसादि गुण होने की आवश्यकता है जो मुग्धा के पास अभाव से है। और इसीलिए मुग्धा को अभिसारिका वर्ग मे दूर हटाया है। अधिक से अधिक प्रेमवाक्याभिसारिका वर्ग में उसे स्थान दिया जा सकेगा! शृङ्गारमञ्जरी ने लक्षण बतलाया है कि: नायक निकटं गत्वा प्रेमवाक्यानि या वदति सा प्रेमवाक्याभिसारिका। इस नायिका की पहुँच नमेशृङ्गार को लाँघकर जाने की नहीं है और नायक की भी वही कामना होती है।

रसमञ्जरी में अभिसारिका के कार्यकलापों को निम्नानुसार वर्णित किया है:

समयाऽनुरूपवेषभूषणशङ्काप्रज्ञानैपुण्यकपटसाहसादय इति परकी-
यायाः। स्वीयायास्तु प्रकृत एव क्रमः अलक्ष्यतासम्पादकस्य श्वेताद्या-
भरणस्य स्वीयाऽभिसारिकायामसम्भवात् ।

परकीयाभिसारिका अपनी पूरी काया को अधिक से अधिक अवगुण्ठित करती है; हेतु यह कि नित परिचित भी ऐसी स्थिति में न पहचाने, क्या पहनावा, क्या चालचलन ! वैसे ही गात्रों का सुडौल सौष्ठव और गति का लालित्य देखकर वे उसका पीछा भी न करे। आवरण के वस्त्रों में उसे कितनी सतर्कता रखनी पड़ती है! रात्रि के अभिसार के लिए, कृष्णपक्ष मे काली अथवा नीली, और शुक्ल पक्ष में सफेद साड़ी पहननी होती है और अवगुण्ठन या दुपट्टा भी उसी ढंग का! इर्द गिर्द के वातावरण के साथ एकतानता पाने का प्रयास किया जाता है, वह भी अदृश्यता संपादित करने के लिए !

स्वीया का अभिसरण अपवादात्मक होने से वह न तो विशेष वस्त्राभरण धारण करती है, न नजर चुकाती है। गाथा सप्तसई (क्र. ४१५) मे ध्वान्ताभिसारिका से कविवर कहता है :

चोरिअरअसद्धालुइ मा पुत्ति ब्भमसु अन्धआरम्मि ।
अहिअअरं लक्खिज्जसि तमभारिए दीवसीहव्व ॥

अँधायारी रात में अभिसरण के लिए सज्जित होनेवाली अरी स्त्री, इस तमपट पर भरोसा मत कर ! तेरा गोरा वदन अन्धकार की पार्श्वभूमि पर अधिक धवल दिखाई देता है, मानो, दीपक की लौ।

मै जिस साहस के लिए उद्युक्त हुई हूँ उसमे अपावनता है, व्यभिचार खुल पड़ा तो अप्रतिष्ठा की कालीख मुँहपर पोती जायगी, घर-बार से हाथ धोना पड़ेगा ! ये सारी बातें अभिसारिका को मालूम है। यद्यपि प्रकृति तम का मण्डप तानती है तथापि इसके मन मे पूनम की राका छिटकी हुई होती है। शङ्काएँ एवं संदेहों के कारण उसके कदम रास्ते में कई बार लड़खड़ाते हैं, बोझसा लगता है, फिर भी सूखे पत्तोंपर पगों की ध्वनि न हो इस बात की दखल उसे लेनी होती है। सीना सिहरता है, पलकें थर्राती है, दिल धड़कता है वह भी चिन्ता और आसक्ति के कारण ! मै तो हिम्मत कर के निकली, यह सही, लेकिन अब तो बचने के लिए कोई चारा नहीं रहा। यह अन्देशा मन में बार बार चिल्लाता है। रात के समय अभिसार के लिए चलना यानी पूर्व तैयारी भी करने की आवश्यकता है। गाथा सप्तसई (क्र. २४६) में कवि कहता है :

अज्ज मए गन्तव्वं घणन्धआरं वि तरुस सुहअस्स।
अज्जा णिमीलिअच्छी पअपरिवाडिं घरे कुणइ ॥

आज की इस अंधेरी रात में प्रिय को मिलने जाना है इसलिए आर्या घर ही में आँखें बन्द कर चलने का अभ्यास कर रही है।

ये शतपगिया कौतुक की दृष्टि से भले ही सराहनीय हो परन्तु वास्तविक स्थिति में उसका किस हदतक उपयोग हो सकेगा ? रास्ते में पत्थर कंकड़, गड्ढे-टीले है ही। कहीं ठेस लगेगी, कहीं पैर फिसलेगा, पता नहीं चलेगा ! हर जगह साँप, बिच्छू रेंगते होंगे। उनका लोहा मानूँ तो एक पग भी आगे जाना मयस्सर नहीं। अकेली देखकर जबरदस्ती से अनुचित लाभ उठाने की आदतवाले गुण्डे, ऐन मौके पर यकायक मिलने वाले परिचित हितैषी, संदेह के कारण किसी को भी, कभी भी रोकने अटकाने के अख्तियारीमन्द अशिष्ट पहरेदार --इन सबों की आहट समझने की धूर्तता, उन्हें टालने की चतुरता, उन बन्दियों को ढहाने के लिए आवश्यक समयोचित नैपुण्य, साहस या कपट के बिना इस साहस मे सफलता किधर ? मै अकेली हूँ, यह देखकर यदि नायक ने कुछ अनुचित किया तो ?

संकेत के अनुसार नायिका उस स्थानपर नियत समय पर गई, लेकिन नायक उस दिशा की ओर आया तक नही, ऐसी शिकायतों के कई उदाहरण गाथा सप्तसई मे पाये जाते हैं। अभिसारिका के विलम्बी आगमन के कारण संकेत स्थान पर आराम से सोये हुए नायक का उल्लेख भावप्रकाशन मे आया है। निद्रिस्त को जगाया गया, भला, वह आँखें मलेगा या प्रिया को अभिसारेगा।

सामान्या--अभिसारिकाओं के दो वर्ग माने जाते है; एक है वेश्याभिसारिका और दूसरा गणिकाभिसारिका। वेश्या केवल रूपजीवा, अधम नायकों के लिए देहविक्रय करना ही उसके जीवन का

इनिकर्तव्य है; इसीलिए उसका स्वीकार नायिका वर्ग में नहीं हो सकता। गणिका गुणवन्ती स्त्री होती है। उसके अनेक गुणों का निर्देश करते हुए भरत अपने नाट्यशास्त्र मे (२४ : १०७–११०) बतलाता है:

प्रियवादी प्रियकथा स्फुटा दक्षा जितश्रमा।
एभिर्गुणैस्तु संयुक्ता गणिका परिकीर्तिता ॥

गणिका केवल नृत्यगायन मे ही नहीं बल्कि चतुःषष्ठिकलाओं की प्रवीणा होती है। माना कि यह सब सत्य है, लेकिन उन गुणो का रङ्गमञ्च बैठकखाना है, अभिसार में उसका कौन उपयोग? हाँ, उसके पास ऐसे कितने ही गुण होते है जो अन्यत्र प्रत्येक स्थानपर उपयोगी साबित हो सकते हैं। उन गुणो से निर्जन प्रान्तर और अमावस की काली स्याह रात भी अभिराम एवं उज्ज्वल हो सकेगी! उसके स्वर से माधुर्य की मधुरिमा मुखरित होती है; और वार्तालाप से आर्जव उत्कण्ठा की कल्पना सशब्द बनती है। प्रियकर को भाए ऐसी हर बात को, वह उसकी चित्त वृत्ति की स्थिति को समझकर, अवश्य कर के दिखा सकती है; कभी व्यङ्ग्य के माध्यम से, तो कभी सीधी स्पष्टता से। चतुराई तो मानो उसके कण कण में भरी हुई होती है। प्रियकर का मन जीत लेने और उसकी मर्जी को सम्हालने के बारे में वह बड़ी दत्तचित्त होती है। वह जिस प्रकार बाह्योपचार कौशल की परिसीमा है, उसी भाँति रतिनैपुण्य की पराकोटि भी! थकान शब्द को उसके जीवन में कही भी स्थान नही है। किसी भी तरह से वह अपने प्रियकर के आनन्द का विषाद होने का अवकाश नहीं देती, इसीलिए कि वह कभी थकान को कम से कम दिखाती तो नही है। गणिका अभिसारिका जब अभिसार केलि के लिए सङ्केत स्थान पर आगमन करती है तब उस के शृङ्गार को देखकर मन बावला बन जाने को होता है। कुन्तल सम्भार में गूँथे हुए मुँगरे के गजरे का सौरम्भ हवा की हर बयार को महकाता अन्तरीक्ष मे समा जा रहा है; प्रत्येक पगपर गुँजित होने वाले पायलों के झनन् झङ्कार मन को शतशः विदीर्ण करते है! और कल्पना कीजिए, यदि यह अभिसार बेला सान्ध्य समय अथवा सुशीतल मधु राका की हो तो? तो फिर मत पूछिए! चंद्रिका पर्व में उसकी कमनीयता का रूप और भी अधिक मोहक बन जाता है; वेशभूषा का शृङ्गारकौशल और अभिसार केलि मन को चकित करती है! किसी कवि राज ने समुचित ही कहा है :

संस्कृतान प्राकृतं इष्टं ततोऽपभ्रंश भाषणम्
ततः प्रियतरा वेश्या सर्वतश्चाभिसारिका ॥

अभिसारिकाओं मे भी उत्तमा, मध्यमा व अधमा वर्गजात की स्थापना की जाती है। शृङ्गार-मञ्जरी में बतलाया है: देहं विस्मृत्य साहसैग्सहाया या अभिसरति सा उत्तमा। लौकिक देह को भूल कर प्रिय के मिलन को जाने के लिए जो केवल साहस का साथ अपनाती है, वह उत्तमा है। जो दूती का साथ लेकर चलती है वह मध्यमा है और समय सुविधानुसार चलनेवाली अधमा है।

समग्र अष्टनायिका परिसर मे रसिकों को अभिसारिका से सर्वाधिक सानुराग रहा है। अभिसारिका मूलतः मतवाली ही है। प्रत्येक जीवन की यह कामना होती है कि मानो हम संकेत स्थानपर प्रतीक्षा मे बैठे है और हमारे गुण विशेषो पर अनुराग करते हुए कोई अनुपम अभिसारिका आनेवाली है या अब आती ही होगी! मनुष्य की कल्पना की पहुँच को कैसे समझे? हजारों में से किसी एकाध की यह कामना जीवन मे शायद ही एकाध बार पूरी होती है। यह भाग्य एवं प्रारब्ध का खेल होता है; और भाग्य बहुसंख्यातो के बस की चीज़ भी नहीं होता!

६: दूत व दूती

अनुरक्त या अधीर नायक–नायिकाएँ अपने मन का आशय एक दूसरे को किस माध्यम से सूचित करें? उनके प्रणय सम्बन्धों के हेतु की पूर्ति किस प्रकार हो सकेगी? कामशास्त्रकार व्यावहारिक दृष्टिकोण का स्वीकार करते हुए कहते है कि दूत व दूती इस माध्यम की सहायता से; नाट्य व साहित्य शास्त्रकार भी इसी मार्ग का प्रदर्शन करते है। और इसीलिए यह आवश्यक है कि इस उपागड़ का भी विचार करें।

वात्स्यायन कहता है कि नायक अपने व्यवहार किसी मित्र के द्वारा सम्पन्न करें, प्रणय व्यवहारों को भी उससे मुक्ति नही है। स्नेह, रुचि और व्यवसाय इनके कारण मित्रों को जुटाया जा सकता है। वात्स्यायन ने निर्देशित किए हुए कुछ उदाहरण यहाँ उद्धृत किए जा रहे है :

(१) स्नेहप्राप्त : धात्री पुत्र (एक ही दाई ने जिन्हें बढ़ाया है ऐसे समवयस्क), समानशील व्यसन सहपांसुक्रीडित (बचपन मे एक ही मिट्टी मे खेले कूदे), सहाध्यायी, आदि; (२) गुणप्राप्त : पितृपितामहो के जमाने मे जिनका परस्पर सम्बन्ध है ऐसे कुटुम्बो के युवक, अमत्रविस्त्रावी (रहस्य की गोपनीयता रखने वाला), आदि (३) व्यवसायप्राप्त : रजक, नापित, मालाकार, गौधिक, सौरिक (कलाल), भिक्षुक (नित्य भिक्षा वित्तपर उपजीवित रहनेवाला), गोपालक, ताम्बुलक, सौवर्णिक, पीठमर्द, विट, विदूषक आदि।

विट व विदूषक और पीठमर्द व चेट उपनागरक है। संस्कृत साहित्य मे वे प्रायः नागरक नायक के सम्पर्क मे पाए जाते है। **पीठमर्द** साधारणतः एकाकी और परदेश से आया हुआ व्यक्ति होता है। वह स्वयं माना हुआ रसिक और कलासम्पन्न पुरुष होता है। पीठमर्द इस संज्ञा का अभिधान भी इसी हेतु से हुआ है कि जो गणिकाओं को कलाओं की शिक्षा देकर अपना आचार्यत्व सिद्ध कर दिखाता है। इसी आचार्यत्व के कारण गणिकाएँ उसके साथ बड़े सम्मान का आचरण रखती है और अन्य इच्छुक भी उसे गुरू मानते है। **विट** प्रायः स्थायिक एवं कुटुम्ब वत्सल पुरुष होता है। वह सकल विद्यापारङ्गत, सकलकलासम्पन्न एवं सुसंस्कृत होता है। किसी एक समयपर लब्धप्रतिष्ठित एवं लक्ष्मीसम्पन्न इस नागरक ने केवल उपभोग तथा कला के पुरस्कार मात्र के लिए अपनी सम्पत्ति को उदारता से बाँट दिया था। अब चरितार्थ का कोई साधन न रहा। फिर हाल वह उपजीविकोपार्जन एवं कुटुम्बपोषण के लिए रसिको, सम्पन्न नागरकों और गणिकाओं के पुरस्कारोंपर अवलम्बित होता है। वे भी उसके उज्ज्वल अतीत का आदर करते हुए और अपनी कला रसिकता का परिचय देते हुए उसको अपने समान सम्मान का पद देते है। लेकिन इस परिस्थिति से वह बड़ा तंग आता है। गाथा सप्तशती (क्र: ७२३) का कवि कहता है :

विअलिअ कलाकलावो चंदो मित्तस्स मंडलं विसइ।
णिस्सरिओ तादिसो च्चिअ गअविहवं को समुद्धरइ॥

शशि सतेज और कलापूर्ण है: परन्तु आकाश में मित्र की आभा जब तक होती है तब तक उसकी प्रभा विलोकित नहीं होती! जिनका वैभव मिट चुका है उनका उद्धार कौन करेगा?

कभी कभी ऐसा भी पाया जाता है कि गणिकाएँ भी उसका अवमान और उपमर्द करती हैं। अपनी उपार्जना का कुछ अंश उसे देना उनके लिए बड़ी विपत्ति होती है!

विदूषक बहुतांशतः नायक का सखा होता है। विद्या व कला का वह सामान्य विद्यार्थी होता है। किसी के भी दोषों को वह बिना हिचकिचाहट से कहीं भी कह डालता है। परन्तु वह स्वयं निरंहकृत और प्रामाणिक होने के कारण उसकी बातों में कोई सचमुच गम्भीरता से क्षुब्ध नहीं होता। अन्यान्य प्रकारों से वह सभी लोगों का मनोरञ्जन करता है। **चेट** नायक को प्रसाधन में सहयोग देता है, बड़ा वाचाल होता है और सम्बन्ध संधान कुशलता में विशेष प्रवीण होता है। ये नागरक के आश्रय की छाँह में और उसके सदा समीप होते हैं।

दौत्य का कार्य बड़ा महाकठीण और नाजुक! अन्या नायिका से पाला पड़नेपर मानिए प्राणों के होश उड़ जाएँगे। ऐसे काम अक्सर पुरुषों की क्षमता के बाहर की चीज होते हैं! अन्तःपुर में प्रवेश पाना पुरुषों के लिए मुश्किल चीज होने से उचित है कि वहाँ दूती का उपयोग करें।

पारदारिक अधिकरण के दूती नामक प्रकरण में वात्स्यायन अवलोकित करता है:

दर्शितोङ्गिताकारां तु प्रविरलदर्शनामपूर्वां च दूत्योपसर्पयेत।

जिसने अपनी मनोकामना संकेतित की है, तथापि बाद में जिसका दर्शन असम्भव रहा अथवा जिसके साथ अबतक सम्बन्ध नहीं बढा ऐसी नायिकाओं के साथ दूती के द्वारा सम्बन्ध निर्वाह किया जाए।

इसी प्रकरण में वात्स्यायन आगे कहता है:

विधवेक्षणिका दासी भिक्षुणी शिल्पकारिका।
प्रविशत्याशु विश्वासं दूतीकार्यं च विद्वती॥

विधवा, शकुनिका, दासी, भिक्षुणी और कलाकर्त्री, ये स्त्रियाँ इष्ट स्थान पर सुलभता से प्रवेश पाती हैं तथा विश्वास निर्माण कर दूतीकार्य को सफल बनाती हैं।

दूसरों के घरों में, सीधे अन्तःपुर में, प्रवेश पाने के लिए समुचित लगे ऐसा कारण बतलाने की और आवश्यक समय निकालने की जिसे आदत और समय सुविधा है ऐसी दूतियों के अनेक वर्गों की कल्पना काम, नाट्य व साहित्य शास्त्रकारों द्वारा की है, जो इस प्रकार है:

(१) **निसृष्टार्था:** एक दूसरे से अपरिचित ऐसे प्रेमिकों की प्रेरणा से अथवा उनकी आकांक्षा समझ कर स्वयंप्रेरणा से कौतुकवशात व चतुराई से जो कार्यसिद्धि करती है। (२) **परिमितार्था:** परस्पर के साथ औपचारिकता से परिचित प्रेमिकों का मिलन, जो कि परिस्थितिवशात उनके लिए असम्भव रहा है, एकान्त में करवाने की योजना करती है। (३) **पत्रहारी:** परिचित प्रेमिकों के संकेतपत्रों की वाहिका; इसकी सहायता से मिलन स्थान व तिथि को निश्चित किया जाता है। (४) **स्वयंदूती:** नायिका के साथ संकेत तय करने के लिए अथवा उस निमित्त से नायक को मिलकर स्वयं ही उसके प्रेम का अपहार करती है। नायक के दूत की करतूत भी कभी कभी इसी प्रकार की अधम होती है। (५) **मूढदूती:** प्रेम प्रकरणों की जानकारी न होते हुए भी जो अनजाने पन से प्रेमिकों का दौत्य करती है। साधारणतः नायिका के संदेश इसी के द्वारा पहुँचाएँ जाते है। (६) **भार्यादूती:** नायक की मुग्धा पत्नी, पति अथवा अन्य स्त्री की प्रेरणा से अनजाने पन के कारण उन दोनों का पारस्परिक मिलन करवाती है। (७) **मूकदूती:** नायक व नायिका के द्वारा पहुँचाने के लिए दी हुई वस्तुओं का, जो कि बाह्यतः संकेतदर्शक है, वाहन करती है; स्वयं किसी भी शब्द को मुखरित नहीं करती और अनजाने पन से उन दोनों का मिलन करवाती है। साधारणतः यह परिजन परिवार में से होती है। (८) **वातदूती:** जो स्वयं जिन बातों का मतलब जानती नहीं है ऐसे द्व्यर्थी संदेश एक दूसरे को पहुँचाकर उचित मिलन की संयोजना करती है। संस्कृत में ये संज्ञाएँ भले रोचक लगे तथापि उनका अर्थ लगभग एक ही है: सम्पन्न नायक की लम्पटतापर जीविकोपार्जन के लिए अवलम्बित रहनेवाले। वयोवृद्ध विधवा वयोवृद्ध दूती वर्ग की प्रतिनिधि; धात्रियों व वृद्धगणिकाओं का स्वीकार भी इसी वर्ग में होता है। वृद्धा नारी पतिव्रता मानी गई है, अतः उन्हें कौन

रोकेगा? ईक्षणिका सच्चे और बहानेमन्द वर्ग की प्रतिनिधि! नापित स्त्री केशभूषा में नायिका की सहायता करती है, उसके बालों में सौवर्णिक स्त्री द्वारा लाये हुए अलङ्कार और मालिनी के भेजे हुए फूल गूँथती है, अतः ये व उसके समान अन्य व्यवसाय करनेवाली स्त्रियाँ शकुनवन्ती स्त्री की अपेक्षा व्यवहार में अधिक उपयोगी होती है। नायिका के औदार्यपर जीविकोपार्जन करनेवाली परिजनों एवं सम्बन्धिनियों के वर्ग की प्रतिनिधि है दासी। इसी वर्ग के अन्तर्गत मातृश्वसा, सखी व सम्बन्धिनी को रखा जाता है।

उनमें से हर एक को अपनी स्वामिनी की आज्ञाओं के अनुसार चलना होता है। समाज की रचना ज्यों ज्यों संश्लिष्ट रूप धारण करती है, त्यों त्यों रहनसहन की पद्धति बदलती है; पुराने व्यवसाय मरमिट जाते है और नवीनों का उत्थान होता है; पुराने स्वाँग बरबाद होते है और नये आबादी से पनपते है; इसी चक्र के कारण दूत व दूती सम्बंधी वर्गों में देश काल परिस्थिति के अनुसार केवल हेरफार मात्र होता है। उनका मूलगामी रूप ज्यों का त्यों रहता है। राजा भोज ने शृङ्गार प्रकाश में दूत व दूती इनके दस वर्गों की सर्जना की है। वर्गीकरण किसी भी ढँग से किया जाएँ और तालिकाओं को भी वर्धित करे, तो भी इस वर्ग में पानेजाने वाले व्यक्ति आज भी उसी पुराने चक्की को ढोते जा रहा है। डॉ. रीटमन ने कहा है कि द्रव्य प्राप्ति के लिए देहविक्रय व दौत्य ये विश्व के सबसे पुरातन व्यवसायों में से (The second oldest profession) पुरातनतम उपजीविकोपार्जन साधन है। कल्पित सुख और सञ्चित सम्पत्ति इस आधार को ले कर जबतक व्यक्तियों के व्यापार और समाज का संविधान चलनेवाला है, तब तक उपरोक्त व्यवसायों का अन्त नहीं होगा!

स्वीकृत कार्य यशस्वी बनाने की दृष्टि से दूत व दूती इनके पास कौन गुण होने चाहिए? कामसूत्र में (१-५) वात्स्यायन ने कहा है:

पटुता धाष्टर्यमिङ्गिकारज्ञता प्रतारणकालज्ञता
विपह्यबुद्धित्वं लघ्वी प्रतिपत्तिः सोपाया चेति दूतगुणाः।

वाक्चातुर्य (जिसके कारण मिन्नतें मनचाहा नतीजा निकाल सकती हैं), धाष्टर्य (लांगुलचालन करने के लिए धाष्टर्य की आवश्यकता है), हावभाव से मन का इशारा समझने की चतुराई, प्रतारणा चातुर्य; कार्यसिद्धि के लिए काल उचित है अथवा अनुचित है, इसका तत्काल निर्णय करने की तीव्र बुद्धि; यकायक आयी हुई विपदा को उचित उपाययोजना से निर्मूलित करते हुए उस से अपने को मुक्त करने की चतुराई आदि गुण दूत व दूती इनके पास होने चाहिए।

उत्तमा, मध्यमा अथवा अधमा वर्गीकरण का उपयोग नायिकाओं की भाँति दूतियों को भी लागू किया जा सकता है। निसृष्टार्था उत्तमोत्तमा, परिमितार्था उत्तमा; एतदर्थ सम्प्रदान की कामना रखनेवाली मध्यमा। नायका के नाम नायक के पास सन्देश रखकर जो स्वयं उसके साथ रत होती है उसे अधमा कहा जाता है। गाथा सत्तसई (क्र. ७६३) की अधम दूती का उदाहरण देखिए:

जइ तेण तुज्झ वअणं ण कअं मह कारणेण अ हआसे।
सा कीस खाण्डअतडं णिआहरं दूइ दुम्मेसि॥

दूती, तुम कहती हो कि उसने मेरी बिन्ती को माना नहीं; इन्कार किया, अगर यह सच है तो फिर दुष्टे, यह तो बता कि तुम अपना काटा होंठ बारबार क्यों चूसती हो?

भरत (नाट्यशास्त्र : २३-१२--१३) और वात्स्यायन (काम सूत्र : पारदारिकाधिकरण) इन्होंने इस कार्य प्रणाली सम्बन्धी एक रूपरेखा आंक रखी है। सम्बन्धी भाग का कुछ अंश उद्धृत किया जाता है, देखिए: दूती नायिका के साथ अपना परिचय करा ले। उसके मन को नाप रखे और उसका उचित दिशा दिलाने का प्रयत्न करे। इधर-उधर की गपशप करते करते उसे कुछ ऐसे आख्यान सुनाए कि उसका कुतूहल और सोया मन जाग उठे। उसके सौन्दर्य और आकर्षण की स्तुति करे। उसकी बुद्धि एवं सुशीलता इनकी अनुपमयता बतलाए। इस प्रकार से योग्य पार्श्वभूमि तैयार की जाय, और उचित बीजारोपन के लिए योग्य अवसर पा कर भाल को हाथ का सहारा देकर उसास छोडकर अपनी कसक का अभिनय करते हुए कहे कि: नियति बड़ी कठोरा होती है जी! सगुण अच्छे होते हुए भी नसीब रूपी शतरंज के खेल में

चाहत की बाजी किसके हाथ आती है? देखो लो अपनी बात! तेरे जैसी अप्सरा की जैसी सुन्दरी, सर्व गुण कलासम्पन्न स्त्री और तेरा पति! न उसके कोई रूप है, न गुण है, न भले घर का आदमी सोहता है! बिल्कुल गँवार कहार सा लगता है। तेरे घर का नौकर भी वह हो न सकता! हाँ! तेरे कैसे मिल जाना चाहिए था? रसिक, राजकुमार, स्त्री सद्गुणी और सुन्दर। लेकिन नसीब का फेर कुछ अलग ही है। अगर इसपर नायिका ने विरोध न उठाते हुए असहायता का निःश्वास छोड़ा तो फिर आगे जरा लाड़ में आकर कहने बनना: हमारे यजमान जी तेरी बड़ी स्तुति करते हैं। तुझ से बड़ा प्यार है उन्हे! वे तो चाहते थे कि तुझे बहू बना के घर लाए, पर पता नहीं, वह बन न सका। अब तेरे कारण कुमार बड़े विकल बने है। वे तो केवल तेरे भरोसे पर जीते हैं, समझी? उनके घर तेरी चहचाह अधिक की जाती है। इतना बड़ा घर, इतना बड़ा वैभव, उनके कुल व शील की प्रशंसा तो गाँव का हर घर जानता है! तिसपर यदि वह अपनी उत्सुकता कायम रखती हुई दृगोचर होती है तो फ़ौरन हौले से कंचुकी में छिपा कर रखी हुई सुगन्धि की कुपिया उसकी मुठिया में दबा कर रख देना और उसके हाथों को उँगलियों से सिल्हाते हुए कहते जाना कि: यह ले! उन्होंने केवल तेरे कारण इसे दिया था। तेरे साथ भेंट हो यही चाहते है; बेचारा तेरे न नींद कारण ले सकता है। उन्होने कई बार मुझे कहा था। लेकिन तुझे आज बतला रही हूँ, अब तक मन डर खाता था, आज जी कड़ा किया और तुझे बताया! आप लोग बड़े घर की बिटिया ठहरी, कैसा यह सब कहने को जी होता? हाँ, तो अब कह दे कब चलेगी? जल्दी चलना ठीक होगा। इस पर नायिका पूछेगी: यह कैसे हो सकेगा? सास जो पूछेगी, उसे क्या कहूँ? दूती कहेगी: वाह री वा! तो फिर मै किस दिन के लिए हूँ? नदी के किनारे एक मंदिर है, आज वहाँ यात्रा है, उधर चलेंगे। जिससे किसी को संदेह न होगा! हाँ, लेकिन एक बात है, वहाँ बड़ी भीड़ होगी। तो क्या करें? रहने दो भीड़ भीड़ की बात! नदी के किनारे से जरा थोड़ा आगे ऊपर चलने से एक कुञ्ज मिलता है, वहाँ मिलेंगे। उधर एकाध घंटा गपशप करेंगे और बाद मे संध्या काल पर लौटेंगे। मै जो हूँ, तू मत डर! और मेरे साथ अपने बिट भौजाई जो होंगे! नायिका दूती के प्रति अपना विश्वास प्रकट करने के लिए अन्त मे कहेगी: बड़ी जल्दी चली आ! मुझे बाट जोहने मत दे। इतने में वह कह देती है: नही, नही! हम साथ ही चलेगी; रास्ते मे कोई मिलने पर उसके हाथों संदेसा भेजेंगे। तो फिर यह तय रहा! दूती सोचती है कि जब तक यह उन्माद मे मतवाली बनी है तबतक काम करवा के लेना होगा।

ऐसे प्रसङ्गोपर केवल पुरुषों को ही आगे बढ़ना पड़ता है सो बात नहीं! नायिकाएँ भी ऐसी आयोजनाओं मे बड़ी चालाकी दिखाती है।

कभी कभी दूती को पता और संकेत बतलाते समय नायिका इतनी उन्मादित होती है कि पूछिए मत! गाथा सप्तशती (क्र. ४४०) की नायिका की स्थिति अवलोकिए:

सेउल्लिअसव्वंगी गोजग्गहणेण तस्स सुहअस्स।
दूइं पट्ठाएन्ती तस्सेअ घरङ्गणं पत्ता॥

उसकी धन्य कहे जिस के नामोच्चारण से स्वेद के कारण शरीर भींग गया। उसकी ओर दूती को भेजने की बात वह सोचती ही थी कि वह स्वयं दूती के संग उसके घर के आङ्गण में कर पहुँची!

नायिका की आस के कारण नायक की स्थिति बड़ी दयनीय बनती है। नायक के प्राण उड़ न जाए इसलिए स्वय उसकी पत्नी इस दौत्य कार्य के लिए तैयार होती है। ऐसे प्रसङ्गपर गाथा कवि (क्र. ८४) कहता है:

सो तुज्झ करा सुन्दरि! तह छीणो सुमहिलो हलिअ उत्तो।
जह से मच्छरिणीएँ वि दोच्चै जाआएँ पडिवण्णम्॥

सुन्दरी! कर्षक का पुत्र तेरी आस में तडप तडप कर इतना दुबला बना है कि उसकी सौन्दर्य की प्रति प्रतिमा और मत्सरी पत्नी केवल उसके प्राणों का संरक्षण करने के लिए स्वयं दूती कर्म के लिए सिद्ध हुई है।

उपसंहार

संकल्प के अनुसार शृङ्गार नायिकाओं का स्थूलमान से किया हुआ विवेचन समाप्त हुआ! काम नाट्य व साहित्य शास्त्र पर पाए जाने वाले किसी भी संस्कृत ग्रन्थ को उठाइए, विगत पृष्ठों में जिन वर्गों का उल्लेख नहीं किया है, ऐसे कई वर्गीकरण उन्होंने अभिनिवेश के साथ प्रतिपादित किए हुए हैं, ऐसा मालूम होगा। इस प्रवृत्ति का इस से पहले निर्देशन किया है कि संस्कृत शास्त्रकारों की सूक्ष्म विवरण एवं विवेचन शक्ति की पहुँच का ज्ञान होना असम्भव है।

संस्कृत के काम, नाट्य व साहित्य शास्त्रकारों ने नायिकाओं के प्रणय व्यापार मे सहायता प्रदान करनेवाले दूत व दूतियों के भी वर्गीकरण किए हैं। ऐसे काम कौन करते हैं तथा ऐसे कामों को सफल बनाने के लिए वे क्या करें इसका भी ब्यौरा दिया गया है। एतद्विषयक विशेष जिज्ञासु व्यक्तियों एवं इन साधकों को चाहिए कि वे उसके व्यावहारिक पहलू को ही अपने दृष्टि सम्मुख सदा रखें।

संस्कृत के काम, नाट्य व साहित्य शास्त्रकारों ने नायिकाओं की भाँति नायकों के भी भेद सुझाए हैं। कामशास्त्रकारों द्वारा उनका नामविधान शश वृषभादि वर्ग रूप मे हुआ है। इस वर्गीकरण का आधार शारीरिक एवं लैङ्गिक लक्षण हैं; साथ ही कौटुम्बिक जीवन फलदायी और सुखदायी किस प्रकार हो सकेगा इस कल्पना का आदर!

नाट्य व साहित्य शास्त्रकारों ने नायकों के उदात्त, ललितादि पच्चीस वर्गों की स्थापना की है, दिव्यमर्त्यादि शीर्षक के अन्तर्गत नायकों के एक सौ पैंतालीस उपभेद बनाए हैं। स्वभाव परिपोष अथवा विश्लेषण में कोई त्रुटि शेष न रहे तथा रङ्गमञ्चपर नाट्य को सफल बनाते समय अभिनेताओं की ओर से रसभङ्ग का कोई भाव न हो, इस प्रयोजन से प्रेरित हो कर इस बृहद् एवं संश्लिष्ट संविधान का निर्माण हुआ होगा।

सर्वमान्य है कि कला की सर्जना प्रथम होती है और उपरान्त कला की समीक्षा अथवा चर्चा। प्रेरणा कला पक्ष की, भावना की होती है और चर्चा पाण्डित्य का रूप अथवा बुद्धि पक्ष की उपज होती है। ललित कलाओं के सृजनकारों के अन्तर्याम में जब प्रतिभा की ज्योति ज्वलित होती है तब न उसका कभी अन्त होता है, न विलय! कलाकार, विश्व के सृजनहार की भाँति नायक व नायिकाओं के रूप में पात्र तथा घटनाओं एवं संविधानों का सृजन करता है। साहित्यशास्त्रकार उसका केवल विवरण तथा विश्लेषण मात्र करते हैं। मन्मथ का लक्ष्य प्रतिभा की भाँति अलौकिक होता है। उसके जड़ रूप का हमें त्याग करना ही होगा। मन्मथ की संवेदनाएँ दिव्य होती हैं इसीलिए तो कलाकार भौतिक जीवन के नीरस चक्र मे से उन्मुक्त होकर इन क्षणिक, अल्पजीवि संकेतों को शाश्वत तथा चिरस्थायी बनाने के प्रयास में लग जाता है। प्रत्यक्ष शृङ्गार के अनुपात मे साहित्य में अवतरित शृङ्गार की भावना जड़ बनी हुई ज्ञात होती है; तो

काम, नाट्य व साहित्यशास्त्र की विवेचना उससे कई गुना अधिक निष्प्राण! कामशास्त्र के अध्ययन के कारण प्रत्यक्ष लौकिक शृङ्गार को शुष्कता प्राप्त होती है।

गाथा सप्तशती (क्र. २) का कवि बतलाता है:

अमिअं पाउअकव्वं पढिउं सोउं अ जे ण आणन्ति
कामस्स तत्ततत्तिं कुणंति ते कहँ ण लज्जन्ति ॥

अमृतमधुर प्राकृत काव्य का पठन करना अथवा सुनना जो जानते नहीं, उन्हें कामशास्त्र के तत्वों की नीरस चर्चा बड़े उत्साह से करते हुए लज्जा का अनुभव कैसे नहीं होता?

संस्कृत व प्राकृत काव्य में, प्राकृत काव्य अधिक रसपूर्ण एवं श्रेष्ठ क्यों? कारण बतलाया जा सकता है कि संस्कृत काव्य सुसंस्कृतों के द्वारा केवल सुसंस्कृतों मात्र के लिए लिखा गया। साहित्यशास्त्र के निर्बन्धों का पालन करते हुए लिखे जाने के कारण वह अन्ततः जीवन, अन्तःप्रेरणा और साधारण जन मात्र को विमुख बना! और प्राकृत काव्य तो जीवन की उन्मुक्त भाव स्थिति का जीवनाभिमुख एवं सचाई के साथ अंकित निवेदन! श्रेष्ठ कला केवल जीवन की सत्यता का आदर करने के कारण शाश्वत बनती है, इस उक्ति की प्रमाणिकता प्राकृत काव्य से भली भाँति मालूम हो सकती है।

साहित्यशास्त्र व तज्जन्य अरसिक बन्धनों के कारण कला को जड़त्व एवं शुष्कत्व प्राप्त होता है इस प्रकार का भाव अभी अभी प्रस्तुत किया है। संस्कृत साहित्य के प्राङ्गण मे साहित्य की निर्मिति के बाद उल्लेखनीय कलाकृतियों की उपज शिथिल हुई, यह वस्तुस्थिति उपरोक्त कथन की सत्यता को स्थापित कर सकेगी। कहने की आवश्यकता नहीं है कि और भी कई कारण संस्कृत साहित्य की गति विधि को अगतिक बनाने के पात्र बने है।

शास्त्रशुद्धता की पराकोटि का एक उदाहरण पर्याप्त हो सकेगा। पाटना जैन ग्रन्थसंग्रह के नीतिवाक्यामृत हस्तलिखित ग्रन्थ का मराठी भाषान्तर पण्डित वामनशास्त्री इस्लामपूरकर जी ने श्रीमन् सयाजीराव गायकवाड जी की आज्ञा से सन १८९१ में वह प्रकाशित किया, जो तेरहवी शती के कविशृङ्गार अरिसिंह के सूत्रों पर चौदहवी शती के अमर पण्डित ने किए हुए भाष्य या व्याख्या का यह अनुवाद मात्र है; जिस में छन्दः सिद्धिप्रतान नामक वृत्तप्रकरण मे अनुप्रासयुक्त शब्दों का कोष है, जिस की सहायता से किसी भी उदीयमान कवि को कविता के संवेदनाहीन ढाँचे मढने को बड़ी सहायता प्राप्त होगी। इस सारे कथन का ईप्सित यही है कि: नवीन लेखक इस लेख का उपयोग केवल प्राणहीन व संवेदनाशून्य ढाँचे बनाने के लिए न करें।

नायिकाएँ फिर, साहित्य जगत् की हो या लौकिक जगत् की हो, वे सजीव संवेदनाधारिणियाँ है, उनके स्पन्दन क्रन्दन होता है; उनके गुणदोषों, अवस्थाओं, प्रवृत्तियों से व्यक्तित्व की सर्जना होती है, इस तथ्य को ध्यान में रखकर इस लेख का रसग्रहण किया जाए यही प्रार्थना है।

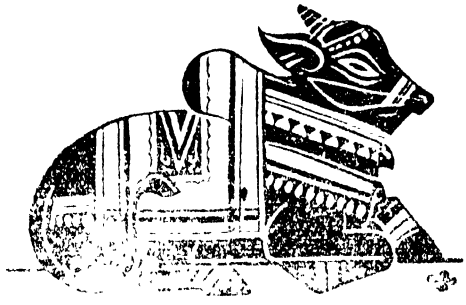

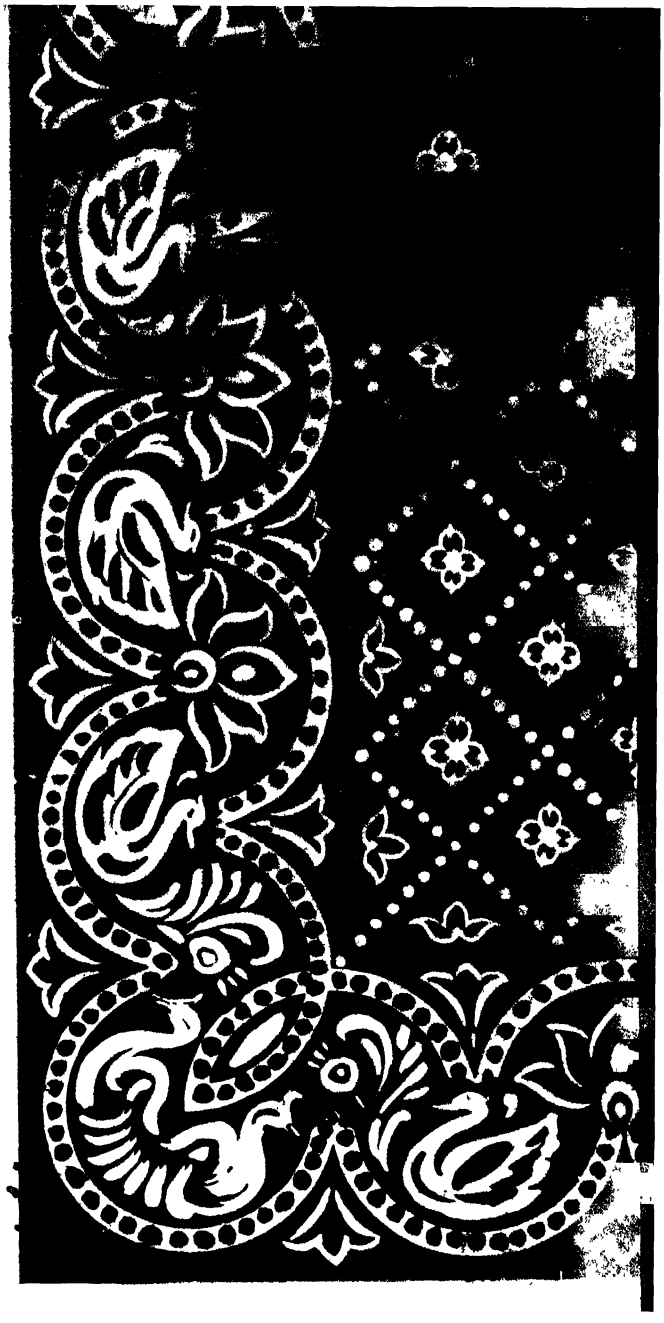

प्रकाशक

दलाल आर्ट स्टुडिओ
४०-४२, केनेडी ब्रिज, मुंबई ४.

हिन्दी आवृत्ति : मूल्य साढ़े बारह रुपया